

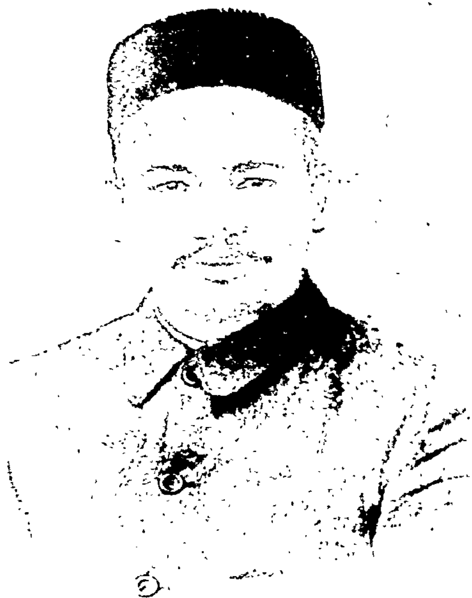
सुभाषित मञ्जूषा ।

चौधरी रामसिंह,

वल टाइटल पेज अमृत प्रेस, अमृतधारा भवन, लाहौर में छपा ।



सुभाषित मञ्जूषा



चौधरी रामसिंह

* ओ३म् *

श्रीमद्दयानन्द जन्मशताब्दी के उपलक्ष में

सुभाषित-मंजूषा

लेखक

चौधरी रामसिंह

मैम्बर पंजाब लेजिस्लेटिव कौंसिल

ग्राम घण्डरां ज़िला कांगड़ा

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥

सुभाषितमयैर्द्रव्यैः संग्रहं न करोति यः ।
सोऽपि प्रस्तावयज्ञेषु कां प्रदास्यति दक्षिणाम् ॥

आर्य्य संवत् १९७२९४९०२५, विक्रम संवत् १९८१

प्रथम संस्करण १००० } सन् १९२४ ई० { मूल्य १॥)

प्रकाशक—
चौधरी रामसिंह M. L. C.
ग्राम घण्डरां
ज़िला कांगड़ा

पुस्तक मिलने के पतेः—

१–मैनेजर वैदिक पुस्तकालय
घण्डरां पो० इन्दौरा ज़िला कांगड़ा ।

२–म० राजपाल मैनेजर आर्य्य पुस्तकालय
अनारकली हौसपिटल रोड लाहौर ।

३–पं० वजीरचन्द शर्म्मा
अध्यक्ष वैदिक पुस्तकालय
मोहनलाल रोड लाहौर ।

मुद्रक—
शरत् चन्द्र लखनपाल
बाम्बे मशीन प्रेस
मोहनलाल रोड
लाहौर ।

उपहार



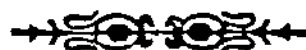
सेवामें

श्रीयुक्त...

....

....

....





नम्र निवेदन।

संस्कृत साहित्य के विशाल-सागर में "सुभाषित-रत्न-भाणडार" 'सुभाषित-रत्नाकर" आदि अनेक नीति-गर्भित ग्रन्थ-रत्न विद्यमान हैं। जिनसे मानव-जाति का बहुत हित साधन हुआ है, और भविष्य में होता रहेगा। परन्तु आर्य्य भाषा अर्थात् हिन्दी-साहित्य का भण्डार जहां तक मुझे ज्ञात है, अभी ऐसे ग्रन्थ-रत्नों से रिक्त है, जिनमें संस्कृत श्लोकों के साथ हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी आदि भाषाओं के समानार्थ-वाची पद्य संगृहीत हों। वास्तव में राष्ट्र-भाषा हिन्दी में यह अभाव बहुत खटक रहा था, और यह आशा थी, कि शीघ्र ही किसी विद्वान् द्वारा इस अभाव की पूर्ति होजायगी। किन्तु यह आशा फलवती न होते देख कर मैंने यह सुभाषित-मंजूषा नामक पुस्तक लेकर जनता के सन्मुख उपस्थित होने का साहस किया है। इसमें संस्कृत को मुख्य रख कर तुलनात्मक रीति से हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और आङ्गल भाषा के समानार्थ तथा समान भाव-द्योतक पद्य एकत्र किये गये हैं। इस संग्रह कार्य्य में मुझे कितना परिश्रम करना पड़ा है, विज्ञ पाठक इससे अनभिज्ञ नहीं रह सकते।

इस पुस्तक को जिस आकार प्रकार में मैं निकालना चाहता था, शीघ्रता के कारण न निकाल सका। इसमें कई एक त्रुटियां रह गई हैं, जिनके लिए क्षमा-प्रार्थी हूं। प्रेस से,

१०० मील की दूरी पर रहने के कारण प्रूफ में भी भूलें रह गई हैं। आशा है कि पाठक सुधार कर पढ़ने की कृपा करेंगे। सहृदय विद्वानों से प्रार्थना है, कि इस पुस्तक के विषय में अपनी अपनी शुभ सम्मति प्रदान करने की कृपा करें। ताकि आगामी संस्करण में उनके सत्परामर्श से यथेष्ट लाभ उठाते हुए यथासाध्य पुस्तक को उत्तम रूप में निकालने का यत्न किया जासके।

मैं उन ग्रन्थकारों तथा सम्पादकों और सुकवियों का अत्यन्त कृतज्ञ हूं, जिनके बहुमूल्य ग्रन्थों और पत्रों से मुझे सहायता मिली है। तथा उन महानुभावों का भी मैं बहुत ही उपकृत हूं, जिन्होंने इस ग्रन्थ की रचना और प्रकाशन में मुझे सहायता दी है। विशेषकर अपने परम-मित्र "संकल्प-दर्शन" आदि बहुमूल्य पुस्तकों के रचयिता प्रोफैसर जगदीशमित्रजी का इस ग्रन्थ की भूमिका लिखने के लिये कृतज्ञ हूं।

पाठकोंसे मैं इतना और निवेदन कर देना उचित समझता हूं, कि यह पुस्तक धार्मिक-दृष्टि से नहीं बल्कि साहित्यिकदृष्टि से लिखी गई है। अतएव यदि किसी स्थल पर किसी सज्जन को मत-भेद प्रतीत हो, तो उसके लिए मुझे क्षमा करें।

बण्डरां
३० भाद्रपद
सम्वत् १९८१
विक्रमी

विनयावनत—

रामसिंह "आर्य्य-सेवक"

भूमिका।

कवियों और सन्तों के कुछ कथन अपनी उपयोग्यता और विशेष चमत्कार से सर्वसाधारण होजाते हैं; जो निरक्षर और विद्वान् सबके प्रयोग में आने लगते हैं। जहां यह सुभाषित सभा में वाणी का अलङ्कार होते हैं, वहां व्यवहार का मार्ग दिखाने में भी काम में लाये जाते हैं। अनुभव-सागर के यह भाव-रूप मोती अपने खोजियों की छाप लिये हुए मानों असंख्य स्मृतियों की भान्ति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सुरक्षित-रूप से चले जारहे हैं। जिस प्रकार संसार की सुन्दर या काम की वस्तुएं एक स्थान पर इकट्ठी कर देने से अनायास घर बैठे दुनियां की सैर का आनन्द मिल जाता है, उसी प्रकार इन बिखरे हुए भाव-रूप रत्नों को एक लड़ी में परोने से अनेक खानों की अनेक भान्ति की श्री का दृश्य दृष्टि-गोचर होता है। परञ्च इस विधि से इन सुभाषितों की सुरक्षा भी होजाती है। अतः साहित्य की फुलवाड़ी से उत्तम फूल चुन चुन कर उनको गूंथना साहित्य ही की सेवा नहीं, विद्वानों, लेखकों, सभाविलासियों, बनियों और किसानों की भी सेवा है। सुभाषित-संग्रह थोड़े समय में अधिक आनन्द की प्राप्ति का साधन है।

संसार की सारी सभ्य-भाषाओं में ऐसे ग्रन्थ पाये जाते

हैं। हिन्दी में भी इनकी कमी नहीं रही। हां, ढङ्ग में अपूगता अवश्य रही है। संस्कृत और प्राकृत के अद्वितीय आदर्श होते हुए हिन्दी को यह न्यूनता विस्मयोत्पादक थी। हां एक बात अवश्य है—हिन्दी साहित्य अभी बन तो रहा है। हिन्दी में इस विषय की दो एक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उनमें "लोक-परलोक-हितकारी" सराहने के योग्य है।

श्रीचौधरी रामसिंहजी का परिश्रम प्रशंसनीय है। एक दो बातों में यह पुस्तक "लोक-परलोक-हितकारी" से कहीं अधिक मूल्य की कृति है। पद्य-प्रयोग इसका विशेष गुण है। पद्य का सार सुभाषित है, तो सुभाषित का श्रेष्ठ साधन पद्य है। संक्षेप पद्य का अनुसरण करता है।

मुझे पूर्ण आशा है, कि चौधरीजी के इस परिश्रम को न केवल प्रशंसा होगी, परञ्च हिन्दी-साहित्य-प्रेमी, लेखक, उपदेशक और वह लोग जो अपने जीवन के लिये आप्त-पुरुषों के वाक्यों से ज्योति लाभ करना चाहते हैं, और दूसरे विद्वान् लोग इसको अपनायेंगे, और चौधरीजी ने जो कष्ट ऐसे अमूल्य वाक्य संग्रह करने में उठाया है। उसका पर्य्याप्त फल देंगे।

हिन्दी-साहित्य में यह अपनी भान्ति की अल्प पुस्तकों में से एक उत्तम पुस्तक है, और फिर पञ्जाब प्रान्त में तो यह

पहिली पुस्तक है, जो कि किसी ब्राह्मण विद्वान् द्वारा नहीं, परञ्च राजपूत-कुल-शिरोमणि द्वारा प्रकाशित हुई है। आशा है, कि सम्पादक महाशय और विद्वान् लोग इस पर अपनी उत्तम २ सम्मतियां प्रकट करके लेखक का उत्साह बढ़ावेंगे, जिससे इस विषय पर और उत्तम ग्रन्थ लिखने वालों को उत्साह मिले। और हिन्दी-साहित्य शीघ्र ही उत्तम ग्रन्थों की कान बन जावे।

जगदीशमित्र,

सम्मोहिनी आश्रम,

लाहौर।



ईश्वर-स्तुति ।

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रण मस्नाविर ँ शुद्धमपाप विद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ १ ॥ यजुर्वेद ४० । ८ ॥

वह परमेश्वर सर्व स्थान में प्राप्त है, अर्थात सर्वव्यापक है, बलस्वरूप है, अकाय है, शरीर धारण नहीं करता अतएव (अव्रन) विस्फोटक रोग विशेष और नाड़ी आदि के बन्धन से रहित है वह शुद्ध है पाप स्पर्शादि से रहित है। (कवि) सर्वज्ञ और (मनीषो) मनका नियमन करने वाला है, (परिभूः) सर्वोपरि है, (स्वयम्भूः) पर सत्ता से रहित स्वयं सब का अधिकरण स्वरूप है, और वह परमात्मा नियत समय में सब संसार को रचता है ॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्य चक्षुः सश्रृणोत्यकर्णः ।

स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥ २ ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् ३ । १९ ॥

परमात्मा हाथ पांव से रहित है परन्तु हाथ पांव का काम करता है, उसके कान नहीं पर सुनता है, आंख नहीं रखता परन्तु सब कुछ देखता है, उसका मन नहीं तो भी वह जानने योग्य सब बातों को जानता है, उसको मुख्य महान् पुरुष कहते हैं ॥

स्थानं न मानं न च सादविंदु
रूपं न रेखा न च धातुरन्यः ।
दृष्टा न दृश्यं श्रवणं न श्राव्यं
तस्मै नमो ब्रह्मनिरञ्जनाय ॥ ३ ॥

स्वामी शंकराचार्य्य ।

जो किसी स्थान में व्याप्त नहीं है और किसी प्रकार परिणाम के योग्य भी नहीं है, किसी प्रकार शब्द से भी नहीं जाना जाता वह रूप नहीं है, रेखा अर्थात चिन्ह विशेष नहीं है, किसी प्रकार वह धातु भी नहीं है, वह दृष्टा भी नहीं है, और किसी उपाय से वह देखा भी नहीं जाता, वह श्रोता नहीं और किसी प्रकार श्रवण योग्य भी नहीं, जो इस प्रकार विभ

व्यापक रूप परमात्मा है उस निरञ्जन परब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूं ॥

विनु पद चलइ सुनइ विनु काना ।
कर बिनु करम करइ विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी ।
विनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन विनु परस नयन विनु देखा ।
ग्रहइ घ्रान विनु बास असेखा ॥

(तुलसीदास)

करता एक अगम है आप ।
वाके कोई माय न बाप ॥
करता के नहीं बँधु और नारी ।
सदा अखंडित अगम अपारी ॥
करता कछु खावै नहीं पीवै ।
करता कबहूं मरै न जीवै ॥
करता के कुछ रूप न रेखा ।
करता के कुछ बरन न भेखा ॥
ताके जात गोत कछु नाहीं ।
महिमा वरनि न जाय मो पाहीं ॥

(कबीर)

ملکا ذکر تو گوئم که تو پاکیزه خدائی،
نه روم من بجز آں ره که تو آں ره به نمائی-
همه درگاه تو پوئند همه فضل تو جوئیند،
همه توحید تو گویند که توحید سزائی-
تو خبیری تو کبیری تو علیمی تو بصیری،
تو معزّی تو مذّلی ملکا عرش نسائی-
همه راعیب تو پوشی همه راعیب تو دانی،
همه را رزق رسانی که تو موجود عطائی-
تو زن و جفت نه نجوئی تو خورو خفت نه خواهی،
احدایے زن و جفتی ملکا کا مروائی-
بری از رنج نیازی بری از درد گدازی،
بری از شرکت و شبهت بری از چوں و چرائی-
نه زیادت نه ولادت نه فرزند تو حاجت،
تو جبیل الجبروتی تو امیر الامرائی-
نه بُده خلق تو بودی نبود خلق تو باشی،
نه بخپسی نه بگردی نه بکائی نه فرائی-
نه سپهری نه کواکب نه نجومی نه جواهر،
نه تو جسمی نه تو ارضی نه نشینی نه تو پائی-
احدالیس کمثلی صمدالیس کضدی،
لمن الملک تو گوئی مر اورا تو سزائی-
نتواں وصف تو گفتن که تو دروصف نه گنجی،

نتواں شرح تو گفتن کہ تو درفہم نہ آئی-
لب و دندان ثنائی ہمہ توحید تو گویند،
مگر از آتش دوزخ بود آں روز رہائی- (ثنائی)

उपरोक्त फ़ारसी नज़म का सारांश यह है कि :—

हे पमात्मा तू सब का स्वामी है, सब कुछ जानने वाला तू "गगन सदृश" है तुझे स्त्री समागम की आवश्यक्ता नहीं है, तू अमैथुनी सृष्टि रचता है तुझे खाने पीने की ज़रूरत नहीं क्योंकि तू सबका पालन कर्ता है तू जन्म मरण के बन्धन से रहित है, सन्तान की तुझे जरूरत नहीं तेरी महिमा अपरम-पार है। जिसका मैं पार नहीं पासकता इत्यादि ॥

मूकं करोति वाचालं पङ्गुलङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥४॥

(भागवत)

जिसकी अपारदया से बहिरे में बोलने की शक्ति आ जाती है और लूला पर्वत को पार करने में समर्थ हो जाता है ऐसे आनन्दमय परमात्मा की मैं वन्दना करता हूं ॥

मूक होय वाचाल, पंगु चढ़े गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सुदयालु, द्रवौ सकल कलिमल दहन ॥

तुलसीदास ।

चरण कमल बन्दौं हरिराई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे सब कुछ दरशाई ।
बहिरो सुने मूक पुनि बोलै, रंक चलै शिर छत्र धराई ॥
"सूरदास" स्वामी करुणामय, बार बार बन्दौं तोहि पाई ॥

धर्म्म का तत्त्व ।

*** संक्षेपात्कथ्यते धर्मो जनाः किं विस्तरेण वा ।**
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम् ॥५॥

हे मनुष्यो ! तुम्हें संक्षेप रूप से धर्म का सार कहते हैं, विस्तार से क्या प्रयोजन है, परोपकार ही पुण्य है और दूसरों को दुःख देना यही पाप है ।

परहित सरसि धर्म नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥ (तुलसीदास)

مباش درپے آزار و هرچه خواهی کن
که درشریعت ما غیر ازیں گناہے نیست (حافظ)

मबाश दरपै आज़ार व हरचे ख़्वाही कुन ।
कि दर शरीयते मा ग़ैर अज़ी गुनाहे नेस्त ॥ (हाफ़िज़)

---

* अष्टादशपुराणानां सारं सारं समुद्धृतम् । कहीं कहीं इस श्लोक का पहला पद इस प्रकार भी पाया जात है ।

और जो चाहे सो कर परन्तु किसी को दुःख मत दे, क्योंकि हमारी शरीयत में इससे अधिक कोई पाप नहीं है।

اگر انصاف پرسی بداختر کس است،
که در راحتش رنج دیگر کس است- (سعدی)

अगर इन्साफ पुरसी बद अख़्तर कस अस्त।
कि दर राहतश रंज दीगर कस अस्त॥

यदि तू न्याय की पूछता है सो, हतभाग्य वह मनुष्य है, जिसके सुख में दूसरे को दुःख हो।

दुख दे न किसी दिल के तईं बाग़े जहां में।
गर नख़्ले हयात अपनी से चाहे कि समर ले॥

एक उर्दू कवि यहां तक बढ़ गया है, कि पर-पीड़ा को मद्यपान आदि से भी बदतर बयान किया है, सुनिये—

तोड़ मसजिद फाड़ मसहफ़ कर ज़ना और पी शराब।
जो तू करता है सो कर पर मरदुम आज़ारी न कर॥

कबीर जी कहते हैं:—

कबीरा सोई पीर है जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानइ सो काफर बे-पीर॥

———

पितृ-भक्ति का फल।



* पित्रोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा।
तेषु हि त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्येत ॥६॥

मनुष्यों को उचित है कि माता, पिता और आचार्य्य से सर्वदा प्रेम करें क्योंकि इन तीनों के प्रसन्न होने पर मनुष्य का सम्पूर्ण तप सफलता पूर्वक समाप्त होजाता है।

चारि पदारथ कर तल ताके।
प्रिय पितुमात प्राण सम जाके॥ (तुलसीदास)

جنت کہ رضائے مادران است،
اندر تہ پائے مادران است۔

---

* अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपि सेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्॥ (मनु)

जो प्रतिदिन वृद्धोंकी सेवा करता है और नम्रस्वभाव वाला है उसकी आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है।

पिता स्वर्गः पिता धर्म्मः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥

स्वर्ग, धर्म और बड़ी भारी तपस्या पिता ही है, पिता की प्रीति पूर्वक सेवा करने से सब देवता प्रसन्न होजाते हैं।

जन्नत कि रज़ाए मादरान अस्त
अन्दर तहे पाये मादरान अस्त

स्वर्ग का सुख माताओं के पैरों तले है और वह उनको प्रसन्न करने से प्राप्त होता है।

परोपकार-महिमा।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः,
परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः,
परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥७॥

परोपकार के लिये वृक्ष फलते हैं। परोपकार—निमित्त नदियां वहती हैं। परोपकारके वास्ते गौवें दुग्ध प्रदान करती हैं। और परोपकार के लिये ही यह शरीर है।

तरुवर फल नहि खात हैं, सरवर पियहिं न पानि।
कह "रहीम" पर काज हित, सम्पति सुचहिं सुजानि ॥

पर उपकार लिये नदियां वहत वेश,
पर उपकार लिये फलत परत हैं।

पर उपकार लिये दूध देत गाय सदा,
पर उपकार लिये टंकन जरत हैं ॥
पर उपकार लिये बरसत मेघ सदा,
पर उपकार लिये तरनि तरत हैं ।
'गोविंद' कहत ऐसे सुजन सकल सदा,
पर उपकार हित कारज करत हैं ॥

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः,
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
नादन्ति सस्यं खलु बारिवाहाः,
परोपकाराय सतां विभूतयः ॥८॥

नदियां अपना जल स्वयं नहीं पीती हैं और वृक्ष अपने फल आप नहीं खाते हैं, तथा मेघ भी अन्न को उत्पन्न करके स्वयं नहीं खाते हैं, किन्तु सज्जनों की सम्पत्ति परोपकारार्थ ही है।

वृच्छ कबहूं नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने साधुन धरा शरीर ॥
तरवर सरवर सन्त जन चौथे बरसे मेंह ।
परमारथ के कारने चारों धारें देह ॥

(कबीर)

परोपकरणं येषां जाग्रतिहृदये सताम् ।
नश्यंति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे ॥९॥

जिन सज्जनों के हृदय में निरन्तर परोपकार बुद्धि जाग्रत रहती है, उनकी सब विपत्तियां नष्ट होजाती हैं और सम्पदाएं पद पद पर प्राप्त होती हैं ।

पर-हित बस जिन्ह के मन माहीं ।
तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥ (तुलसीदास)

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः,
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥१०॥

(भर्तृहरि)

जस तरुवर फल भार ते, अतिहि नम्र होय जाय ।
नव जल ते परिपूर घन, झुकै भूमि पर आय ॥
उत्तम जन धन पाइके, चले न चाल उताव ।
पर उपकारी जीव को, याही नम्र सुभाव ॥

फल भरी नम्र विटप सब रहे भूमि नियराइ ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसम्पति पाइ ॥

(तुलसीदास)

تواضع کند نیک مند گزیں،
نہد شاخ پر میوہ سربر زمیں- (سعدی)

तवाज़े कुनद नेक मन्दे गज़ीं
निहद शाख़ पुरमेवा सिर बर ज़मीं (सादी)

सत्पुरुष समृद्धि पाकर सेवा धर्म को स्वीकार करते हैं, जैसे कि फलों से भरी हुई टहनी अपना सिर ज़मीन से लगा देती है।

सज्जन प्रशंसा।



* न भवति भवति च न चिरं भवति चिरं चेत्फले वसंवादी। कोपः सत्पुरुषाणां तुल्या स्नेहेन नीचानाम् ॥११॥

प्रथम तो सत्पुरुषों को क्रोध होता ही नहीं, यदि हो तो बहुत देर नहीं रहता यदि बहुत देर रहे तो उसका फल

---

* उत्तमानां क्षणं कोपा मध्यमनां दिनान्तकाः।
अत्यन्त दीर्घ वैराणां दुष्टानां मरणान्तकाः॥

उत्तम पुरुषों का कोप क्षण भर मध्यम जनों का दिन की समाप्ति तक, वैरियों का चिरकाल तक और दुष्टों का कोप मृत्यु दिवस तक होता है॥

कुछ नहीं होता, सत्पुरुषों का क्रोध नीच लोगों के स्नेह के बराबर होता है ॥

सजन कुलीननि को पहिले तो कोप नाही,
कदाचित करे छिन एक में परिहरे ।
छिन में न छूटे कोप काहे एक कारनतें,
तौ परि विरोधी के विकारे को नहीं धरे ।
"देवीदास" बड़ेन के कोप की फल की वेग,
छोड़ि के विकार वैरीहूं को सुख सों भरे ।
बड़ेनि की वैरूप की बोलनि गरमरीहु,
नीचनि के नेह की बराबरी तऊ करें ॥

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारूगंधम् ।
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुकाण्डम् ।
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं ।
न प्राणान्ते प्रकृति विकृतिर्जायते चोत्मानाम् ॥

बार बार घिसने पर चन्दन सुगन्ध देता हैं बार बार काटने पर गन्ना मीठा हो जाता है और बार बार आग में तपाने से सोना चमकदार हो जाता है, प्राणों का संकट उपस्थित होने पर भी सज्जनों की प्रकृति में विकार नहीं होता है ॥

कष्ट परेहु साधुजन नेक न होत मलान ।
ज्यों ज्यों कंचन ताइये त्यों त्यों निर्मलवान ॥ (वृन्द)

स्वभावं न जहात्येव साधुरापद्गतोऽपि सन ।
कर्पूरः पावकस्पृष्टः सौरभं लभते तराम् ॥१३॥

साधु जन आपत्तिकाल में भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते जैसे कपूर अग्नि में जलने पर भी सुगन्ध देता है ॥

इत्र की मिट्टी में मिल कर भी महक जाती नहीं ।
तोड़ भी डालो तो हीरे की चमक जाती नहीं ॥ (हुशार)

सुजनो न याति वैरं पर हित कार्यें विनाश कालेऽपि
छेदेपि चन्दन तरूः सुरभयाति मुखं कुठरस्य॥१४॥

श्रेष्ट पुरुष प्राणों का संकट उपस्थित होने पर भी वैर करके दूसरे की हानि नहीं करते जैसा कि कुल्हाडा चन्दन के वृक्ष को काटता है परन्तु वह उसके मुखको सुगन्धित करता है ॥

उमा संत की यहै वड़ाई ।
मंद करत जो करइ भलाई ॥
संत असंतन कै असि करनी ।
जिमि कुठार चन्दन-आचरनी ॥
काटइ परस मलय सुनु भाई ।
निज गुन देइ सुगन्ध वसाई ॥

(तुलसीदास)

सज्जन तजत न सजनता कीनेहु अपराध ।
ज्यों चन्दन छेदै तऊ सुरभित करहि कुठार ॥
सहज रसीले होयं सो, करें अहित पर हेत ।
जैसे पीड़ित कीजिये, ऊख तऊ रस देत ॥ (वृन्द)

आमन के वृक्ष को जो पत्थर से मारे तोभी,
देता है अमृत फल अवगुन न आने है ।
पृथ्वी के पेट फोड़ी पानि कुं निकासत सो,
जगत जिवावत तो ममता न माने है ॥
केतो दुःख सहित कपास जग सुख काज,
वस्त्र विन कैसी लाज रैयत जहाने है ।
कनक पराए काज ताड़न औंर जाड़न सहै,
ऐसे उपकारी दुःख ही को सुख माने है ॥

(हीरालाल)

पाटीर तव पटीयान् कः परिपाटीमिमा-
मुरीकर्तुम् । यत्पिंषतामपि नृणां पिष्टोऽपि
तनोषि परिमलैः पुष्टिम् ॥१५॥ (भामिनीविलास)

हे चन्दन ! तेरी पद्धति को ग्रहण करने में कौन समर्थ है, जो तुझे पीसते हैं, उन्हें भी अपने चूर्ण की सुगन्धि से पुष्ट करता है ।

सज्जन पिस जाता है तो भी,
पर उपकार किया करता है।
चन्दन घिस जाता है तो भी,
निज आमोद दिया करता है॥

(रामचरित उपाध्याय)

वनेऽपि सिंहा मृगमांसभक्षिणो
बुभुक्षिता नैव तृणं चरन्ति ।
एवं कुलीना व्यसनाभिभूता
न नीचकर्माणि समाचरन्ति ॥१६॥

सिंह जो वन में हिरन का मांस भक्षण करते हैं, भूखे होने पर वह घास नहीं खाते, इसी प्रकार कुलीन पुरुष व्यसन ग्रसित होने पर भी नीच कर्म नहीं करते ।

करे न कबहूं साहसी दीन हीन के काज ।
भूख सहे पर घास को नाहीं भखे मृगराज ॥ (वृन्द)

अति दुख में भी सज्जन, नहीं करेगा कभी बुरे कर्म ।
छाँछ नहीं छूता है, हंस भले ही मरे भूखों ॥

(रामचरित उपाध्याय)

नीरस्यान्यपि रोचन्ते कार्पासस्य फलानि मे ।
येषां गुणमयं जन्म परेषां गुह्यगुप्तये ॥१७॥

सज्जनों का स्वभाव कपास के फल की भान्ति है, जो देखने में नीरस परन्तु वास्तव में गुणोंसे भरपूर होता है उसी का जन्म सफल है, जो दुसरे के दोषों को ढांप देता है।

साधु चरित सुभ सरिस कपासू।
निरस विसद गुन मय फल जासू॥
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा।
वन्दनीय जेहि जग जस पावा॥

(तुलसीदास)

सन्त कष्ट सह अति सुखी, राखे राख समीप।
आप जरै तऊ और को, करै उजेरो दीप॥ (वृन्द)

क्षारं जलं वारिमुचः पिबन्ति,
तदेव कृत्वा मधुरं वमन्ति।
सन्तास्तथा दुर्जन दुर्वचांसि,
पीत्वा च सूक्तानि समुद्गिरन्ति॥१८॥

वादल खारी जल को पीता है और उस को वर्षा द्वारा मीठा करके बरसाता है इसी प्रकार सज्जन लोग दुष्टों के कटु वचनों को ग्रहण करके अपने मधुर स्वभाव से उन्हें मीठा बना देते हैं॥

गाली खाय असीस दो तो है उत्तम इष्ट।
खारी जल बादल गह्यो बरसायो पुनि इष्ट॥

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमाः ।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधु संगतिः ॥१९॥

संसार में चन्दन शीतल है चन्दन से भी चन्द्रमा शीतल है, परन्तु इन दोनों में साधु (सज्जन) की संगति शीतल है ॥

चन्दन शीतल लोक में, चन्दन ते शशि शीत ।
अति शीतल दुहुन ते, सत संगति सुन मीत ॥
कबीर संगत साध की ज्यों गांधी का वास ।
जो कुछ गांधी दे नहीं तौ भी वास सुवास ॥
ऋद्धि सिद्धि मांगौं नहीं मांगौं तुम पै येह ।
निसदिन दरसन साधुका यह कबीर मोहिदेय ॥
राम बुलावा भेजिया दिया कबीरा रोय ।
जो सुख साधु संग में सो वैकुंठ न होय ॥
जा पल दरसन साधका ता पलकी बलिहारी ।
सत्त नाम रसना वसै लीजो जन्म सुधारी ॥
वे दिन गये अकारथी संगत भई न संत ।
प्रेम विना पसु जीवना भक्ति विना भगवंत ॥
एक घड़ी आधी घड़ी आधी से भी आध ।
कबीर संगत साध की कटै कोटि अपराध ॥
कबीर संगत साध की साहिब आवें याद ।
लेखे में वाही घड़ी वाकी दिन बरबाद ॥

सुख देवें दुख को हरें दूर करें अपराध।
कहे कबीर कैसे मिलें परम स्नेही साध॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थ भूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधु समागमः ॥२०॥

साधु जनों अर्थात् सत्पुरुषों का दर्शन ही पुण्य है इस लिये साधु तीर्थ स्वरूप हैं तीर्थ समय पर फल देता है परन्तु साधुओं का संग शीघ्र ही फल दे देता है॥

मुद मंगलमय संत समाजू, ज्यों जग जंगम तीर्थ राजू।
अकथ अलौकिक तीर्थ राऊ, देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥
(तुलसीदास)

तीर्थ में फल एक है संत मिले फल चार।
सदगुरु मिले अनेक फल कहे "कबीर" विचार॥

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
नहि संहरते ज्योत्तिस्नां चन्द्रश्चाण्डाल वेश्मनि २१

अच्छे गुणों से रहित प्राण धारियों पर भी सत्पुरुष कृपा ही करते हैं, जैसे कि चन्द्रमा चाण्डाल के घर से अपनी किरण खेंच नहीं लेता॥

---

१ 'साध्यति पर कार्य्याणीति साधु' पराये कार्यों को जो साधता है वही साधु है॥

भले बुरे हू सो करत उपकारी उपकार।
तर वर छाया करतु है नीच न ऊंच विचार॥ (वृन्द)
खुरशैद वार देखते हैं सब को एक आँख।
रौशन ज़मीर मिलते हर नेको बद से हैं॥ (ज़ौक़)
जो रौशन दिल है नेको वद से यकरूह है ज़माने में।
कि यकसां शमा जलती है मज़ारे दोस्तो दुश्मन पर॥

अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम।
अहो सुमनसां प्रीतिर्वाम दक्षिणयो समा॥२२॥

सज्जन पुरुषों का मन सब पर एक सा रहता है, उन के लिये सभी समान हैं, जैसे अंजलि में लिये हुए फूल बायें और दायें दोनों हाथों का बराबर सुगन्धित करते हैं॥

वन्दऊं संत समान चित हित अनहित नहिं कोउ।
अंजलि गत सुमन जिमि सम सुगन्ध कर दोउ॥
(तुलसीदास)

ऊंच नीच दोनों में, सज्जन कुछ भी न भेद रखता है।
फूल सुगन्धित करता है, देखो युगम हाथों को॥
(रामचरित उपाध्याय)

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वने वने॥२३॥
(चाणक्य)

सब पर्वतों पर माणिक्य नहीं होते, और मोती भी सब हाथियों के शिर में नहीं पाये जाते, ऐसे ही साधु जन भी हर जगह नहीं मिलते, और न सब वनों में चन्दन ही होता है ॥

सब वन तो चन्दन नहीं सूरा का दल नाहिं ।
सब समुद्र मोती नहीं यों साधु जग माहिं ॥ (कबीर)

साधु रहैं नहिं सकल थल, कवि जन कहैं बखानि ।
वन वन चन्दन होंहि नहिं गिरि गिरि मानक खानि ॥
(दीनदयाल गिरि)

रक्खे है लाखों में एक आध जौहरे खूबी ।
नहीं है मादने अलमास सब ज़माने में ॥
(ग़ाफ़िल)

मूलं भुजंगै शिखरं प्लवङ्गैः शाखा विहंगैः कुसुमानि भृङ्गैः । आसेव्यते दुष्ट जनैः समस्तैर्न-चन्दन मुञ्चति शीतलत्वम् ॥२४॥

चन्दन की जड़ों में सर्प, चोटियों पर बन्दर, टहनियों पर पक्षी, और फूलों पर भौंरे बैठे रहते हैं, परन्तु चारों ओर दुष्टों का घेरा होने पर भी चन्दन अपनी ठंडक को नहीं छोड़ता ॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष व्यापत नहीं लिपिटे रहत भुजंग ॥ (वृन्द)

संत न छोड़े संतई कोटिक मिलैं असंत ।
मलया भुवंगहि वेधिया सीतलता न तजंत ॥ (कबीर)

स्वभावं नैव मुञ्चन्ति सन्तः संसर्गतोऽसताम् ।
न त्यजन्ति रूतं मञ्जु काक संपर्कतः पिकाः २५

सत्पुरुष दुष्ट जनों के संसर्ग से भी अपने सुन्दर स्वभाव को नहीं त्यागते जैसे कोकिल कौवे की संगति से अपने मीठे रूत अर्थात शब्द को नहीं त्यागती ।

विधि वस सुजन कुसंगति परहीं ।
फनि मनि सम निज गुन अनु सरही ॥ (तुलसीदास)
एकत ह्वै रह सजन खल तजत न अपनौ अंग ।
मनि विषहर विषकर सरप सदा रहत इकसंग ॥ (वृन्द)
असर अच्छों के दिल में कर नहीं सकती बुरी सोहबत ।
नहीं होता तअस्सर मन में जैसे सांप के फन का ॥
(राज़ी)

शुद्ध अन्तःकरण ।

असंशयं क्षत्र परि ग्रहक्षमा यदार्यमस्याम-भिलाषि मे मनः । सतां हि सन्देह पदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करण प्रवृत्तयः ॥ २६ ॥

(अभिज्ञान शाकुन्तला)

(कण्व ऋषि के आश्रम में शकुन्तला को देख कर राजा दुष्यन्त उस पर आसक्त हो जाते हैं, परन्तु यह जान कर कि

यह ऋषि कन्या है उनके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया जिस का निराकरण उन्होंने अपने मन की सचाई पर भरोसा रखते हुए इस तरह किया) यह कन्या निश्चय ही क्षत्रिय से व्याहने योग्य है इस का पाणिग्रहण क्षत्रिय कर सकता है, इस में सन्देह नहीं अन्यथा मेरा साधु शील सच्चा और दृढ़ मन इस की ओर क्यों झुक जाता ? क्योंकि सन्देह होने पर अच्छे लोगों की प्रवृत्ति ही प्रमाण का काम देती है उनके मन का झुकाव ही भले बुरे का साक्षी है ॥

यही मुशकल श्रीरामचन्द्र जी को भी पेश आई थी, राम लक्ष्मण जनक की वाटिका में घूम रहे हैं, भगवती सीता भी अपनी सहेलियों सहित बाग में विचर रही हैं, राम की दृष्टि सीता पर पड़ जाती है राम के दिल में सीता के लिये प्रेम पैदा हो जाता है, दुश्यन्त की भान्ति आप को भी अपने मन पर पूर्ण विश्वास था देखिये राम लक्ष्मण जी से क्या कहते हैं।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा ।
सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥
सो सब कारन जान बिधाता ।
फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता ॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ ।
मन कुपंथ पग धरैं न काऊ ।

माहि आंतमय प्रतीति मन केरी।
जेहि सपनेहु पर नारी न हेरी॥ (तुलसीदास)

दुर्जन निन्दा।

कर्णामृतं सूक्ति रसं विमुच्य दोषेषु यत्नः सुमहानखलस्य। अवेक्षते केलिवनं प्रविष्टः क्रमेलकः कण्टक-जालमेव ॥ (बिह्लण) ॥२७॥

दुष्ट मनुष्य अमृत के सामन मधु काव्य रचना में गुण को छोड़ कर केवल दोष ढूंढने का यत्न करता है जैसे ऊट किसी सुन्दर उपवन में प्रवेश करके भी केवल कंटीले वृक्ष और झाड़ आदि की तलाश करने लगता है॥

दोषहि को उमहै गहै, गुन न गहै खल लोक।
पियै रुधर पय ना पियै लगी पयोधर जोंक॥ (वृन्द)

न विना परि वादेन रमते दुर्जनो जनः।
काकः सर्व रसान् भुक्त्वा विना मेध्यं न तृप्यति २८

(महाभारत)

दुर्जनों को पराई निन्दा के बिना आनन्द नहीं आता है जैसा कि सारे रसों को चख कर कौवा गन्दगी से ही तृप्त होता है।

दोष लगावत गुनिन को, जाको हृदय मलीन।
धरमी को दम्भी कहै छमी को बल हीन॥ (वृन्द)
पर की निन्दा करके खल फूले तन नहीं समाता है।
जैसे अमेध्य खाकर, काक कलोलें किया करता॥
(रामचरित उपाध्याय)

साधुन की निन्दा बिना नहीं नीच बिरमात।
पियत सकल रस काग खल बिनु मल नहीं अघात॥
(दीनदयाल गिरि)

सारे संसार में सब से अधिक विवेक भ्रष्ट वह मनुष्य है जो लोगों की निन्दा में दत्तचित्त रहता है जैसे मक्खी रुग्ण स्थान को ही ताड़ती है॥ (इस्माइल-इब्न-अबी बकर)

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् २९
(हितोपदेश)

दुर्जन के साथ मित्रता तथा प्रीति नहीं करनी चाहिये क्योंकि अंगार गरम हो तो हाथ को जलाता है, और यदि ठंडा हो तो हाथ को काला कर देता है।

हित हू भलो न नीच को, नाहिं न भलो अहेत।
चाट उपावन तन करै काटि श्वान दुख देत॥(वृन्द)

पंजाबी कहावत है—
रीझे तो चाटे—खीजे तो काटे।

दुर्जनदूषितमनसः सुजनेष्वपि नास्ति विश्वासः ।
बालः पायसदग्धो दध्यपि फूत्कृत्य भक्षयति ३०

(हितोपदेश)

दूषित अन्तःकरण वाले दुष्ट तुरुष का भले पुरुषों में भी पिश्वास नहीं होता, क्योंकि, दूध से जला हुआ, वालक दही को भी फूंक फूंक कर खाता है।

पिशुन छल्यो नर सुजन सों, करत विश्वास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को, पीवत छांछ हि फूंकि॥

(वृन्द)

अहो सहन्ते वत नो परोदयम् ।
निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः ॥३१॥

स्वभाव ही से जिनका अन्तःकरण मलिन होरहा है, ऐसे मलीन हृदय वाले लोग दूसरे का अभ्युदय (उन्नति) सह नहीं सकते॥

खलन हृदय अति ताप विसेखी ।
जरहिं सदा पर सम्पति देखी॥
ऊँच निवास नीच करतूनी ।
देखि न सकहिं पराई विभूति॥
चकवाक मन दुख निसि पेखी ।
जिमि दुर्जन पर सम्पति देखी॥ (तुलसीदास)

जो मन होय मलीन सो पर सम्पदा सहै न ।
होत दुखी चित चोर को चितै चन्द रुचि रैन ॥
(दीनदयाल गिरि)

شوره بختاں بآرزو خواهند
مقبلاں رازوال نعمت و جاه -   (سعدی)

शोरा बख़्तां बआरज़ू ख़्वाहन्द ।
मुक़बलां रा ज़वाल नामतो जाह ॥   (सादी)

भाग्यहीन मनुष्यों की यह प्रबल इच्छा होती है, कि भाग्यशूर पुरुषों के धन, धान्य, और मान सन्मान में कमी हो जाये।

मुखं पद्मदलाकारं वाचा चन्दनशीतला ।
हृदयं क्रोधसंयुक्तं त्रिविध धूर्तलक्षणम् ॥३२॥

मुख कमलपत्र की भांति, वाणी चन्दन जैसी शीतल, और हृदय क्रोध से भरा हुआ, यही तीन चिन्ह दुष्टों के हैं।

देखे को बक ऊजला, मन मैला भाई ।
आँखि मूंदि मौनी भया मछरी धरि खाई ॥
(धनी धर्मदास)

ख़याले हूर दिल में और तोबा लब पै ऐ ज़ाहिद ।
अजी बस देखली जैसी तुम्हारी पारसाई है ॥
(अफ़सर)

रीशे सफ़ेद शेख़ में है ज़ुल्मते फ़रेब ।
इस मकर चांदनी पै न करना गुमाने सुबह ॥ (ज़ौक)

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम् ।
मधुस्तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हलाहलं विषम् ३३

(हितोपदेश)

दुष्ट का प्रियवादी होना विश्वास का कारण नहीं, क्योंकि उसकी ज़बान पर मधु और हृदय में हलाहल विष रहता है।

मन मलीन तन सुन्दर कैसे। विषरस भरा कनक घट जैसे॥

(तुलसीदास)

देखन को सुन्दर लगै, उर में कपट विषाद।
इन्द्रायन के फलन सम, भीतर कुटक स्वाद॥ (वृन्द)

करै न बुध विश्वास को प्रियवादी खल संग।
सुनि बीना की मधुरता मारे जात कुरंग॥
मृदुबादी खल मीत को बुध न करैं इतबार।
अहि कराल केकी भखै मधुर अलाप निहार॥

(दीनदयाल गिरि)

खलानां कण्टकानाञ्च द्विविधैव प्रति क्रिया।
उपान्मुख भङ्गो वा दूरतो वाऽपि वर्जनम् ३४

(चाणक्य)

दुष्ट मनुष्य और कांटा इन के दो ही उपाय हैं, जूतों से मुंह तोड़ देना अथवा दूर से परित्याग करना॥

कटु भाषी भी एक प्रकार का खल ही है इसे पर कवि वर "रहीम" की उक्ति सुनिये—

खीरा का मुख काटिकै मलियत लौन लगाय।
रहिमन कड़वे मुखन की चाहिये यही सज़ाय॥

खलों का स्वभाव सत्पुरुषों को दुःख देने का है इस पर उर्दू के प्रसिद्ध कवि "अकबर" ने दुर्जन को खटमल मान कर क्या उत्तम उपदेश दिया है।

खटमलों पर जज़र तानो ग़ैज़ से मुंह मोड़िये।
गरम पानी डालिये या चारपाई छोड़िये॥

मैत्री न मङ्गल करी कलहो न योग्यो न श्रेयसेऽनुचरता प्रभुता न वृद्धयै। दूराति दूरतर दूराति दूरादौदास्य मेव सुखदं खलु दुर्जनानाम्३५

दुर्जनों की न तो मित्रता सुख देने वाली होती है, और न उन से शत्रुता ही भली है। न तो उनकी अधीनता ही कल्याण-कारी है,और न उनकी प्रभुता ही अच्छी है। अतः दुजनों से दूर ही रहना अच्छा है—

कवि कोविद गावहिँ असि नीती।
खल सन कलह न भल नहिं प्रीती॥
उदासीन नित रहिये गुसाईं।
खलपरि हरिय स्वान की नाईं॥ (तुलसीदास

मूढ़ प्रमाद।

अप्रति बुद्धे श्रोतरि वक्तुर्वाक्यं प्रयाति वैफल्यम्
नयन विहीनो भर्तरि लावण्यमिवेह खञ्जनाक्षीनाम्

निष्फल श्रोतो मूढ़ पै, कविता वचन वलास।
हाव भाव जो तीय के, पति आंधे के पास॥

باسیه دل چه سود گفتن وعظ
که نرود میخ آهنی درسنگ - (سعدی)

वा स्या दिल चे सूद गुफ़तन वाअज़।
कि नरवद मेख़ आहिनी दर संग॥ (सादी)

कलुषित हृदय मनुष्य को उपदेश देने का कोई लाभ नहीं है, क्योंकि लोहे की मेख़ पाषाण में नहीं धसती है।

सदैव ही पञ्चम में सुराग को।
सुना भले ही पिक! क्यों न कागको॥
परन्तु होगी फिर भी वही दशा।
कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः॥

(मैथिलिशरण)

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रंतस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ३७

(चाणक्य)

कहा करें आगम निगम जो मूर्ख समझै न ।
दर्पन को दोष न कछु अन्ध वदन देखे न ॥ (वृन्द)

आँधरे को प्रतिबिम्ब कहा,
बहिरे को कहा सुर राग को तानै ।
आदे को स्वाद कहा कपि को,
पर नीच कहा उपकार को मानै ॥
भेड़ कहा लै करै बुकवा,
हरिवाहो ज्वाहिर का पहिचानै ।
जाने कहा हिजड़ा रति की गति,
आखर की गति क्या खर जानै ॥

अज्ञा सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तन्नरं न रंजयति ३८

(भर्तृहरि)

अज्ञानी सुख तें सधै, ज्ञानी अति सुख द्वार ।
सधै नहिं अल्पज्ञ पै, कोटि करै करतार ॥
फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरसहिं जलद ।
मूर्ख हृदय न चेत जौं गुरु मिलहिं विरंचि सम ॥

(तुलसीदास)

*** उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।**
पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम् ॥३९

(हितोपदेश)

मूर्ख लोगों को उपदेश देने से उनका क्रोध शान्त नहीं होता, जैसे सर्पों को दूध पिलाना केवल विष बढ़ाने वाला होता है ।

अधम जाति में विद्या पाये ।
भयऊँ जथा अहि दूध पियाय ॥ (तुलसीदास)
मूरख को हित के वचन सुनि उपजित है दोष ।
सांपहि दूध पिवाइये वाके मुख विष ओप ॥ (वृन्द)
खल जन को विद्या मिले दिनदिन बढ़े गुमान ।
बढ़े गरल बहु भुजग को जथा किये पयपान ॥

(दीनदयाल गिरि)

मदोपशमनं शास्त्रं खलानां कुरुते मदम् ।
चक्षुः प्रकाशकं तेज उलूकानामिवान्धताम् ४०

---

* अरण्यरूदितं तत्स्यात् यन्मूर्खस्योपशियते ।
हिताहितं न जानाति जल्पितं न कदाचन ॥ (वर्गः)

मूर्खों को उपदेश देना जंगल में रोने के समान है, क्योंकि बकवादी मनुष्य हानि लाभ को नहीं जानता है ॥

शास्त्र मद को शान्त करने वाला है, परन्तु दुष्टों को उस से मद उत्पन्न हो जाता है, जैसा कि प्रकाश आंखों को रौशनी देने वाला है, परन्तु उल्लुओं को उस से अन्धकार प्राप्त होता है, अर्थात् प्रकाश से डर कर अन्धेरी जगहों में जा छुपते हैं"।

मूरख गुण समझै नहीं, तौ न गुनी में चूक।
कहा भयो दिन का विभौ, देखै जो न *उलूक॥ (वृन्द)

گر نہ بیند بروز شپرہ چشم،
چشمہ آفتاب را چہ گناہ- (سعدی)

गर न बीनद बरोज़ शपरा चश्म।
चश्मए आफ़ताब रा चे गुनाह॥ (सादी)

चमगादड़ को यदि दिन में दिखलाई नहीं देता तो सूर्य्य भगवान् का इस में क्या अपराध है।

मुक्ताफलैः किं मृगपक्षिणांच मृष्टान्नपानं किमु गर्दभानाम्। अन्धस्य दीपो बधिरस्य गीतं मूर्खस्य किं धर्म कथाप्रसङ्गः॥४१॥

---

* नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणं॥ (भर्तृहरि)

रवि क्या करहि उलूक ही, जो ना दिवस दिखात॥

जैसे कि मृग तथा पक्षियों को मुक्ता फल और गधों को मीठा भोजन खिलाने, अन्धों के सामने चिराग़ रौशन करने, और बहरों को गीत सुनाने का कोई लाभ नहीं है। इसी प्रकार मूढ़ जनों को धर्म की कथा सुनाने से कुछ नहीं बनता।

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि।
उत्तर प्रति उत्तर बहु आनसि ॥ (तुलसी दास)

शिक्षा कबहुं न दीजिये, यथा योग्य बिन "राम"।
लालटेन की रौशनी, अन्धे के किस काम ॥

कहा धरम उपदेश है मूढन के सामीप,
वृथा कथा है बुधन की जथा अन्ध कर दीप।
हित हू की कहियै न तिहिं जो नर होय अबोध,
ज्यों नकटे को आरसी होत दिखाये क्रोध ॥ (वृन्द)

حرف حق با باطلاں گفتن نہ دارد حاصلے
در زمین شور صائب دانہ افشانی مکن۔ (صائب)

हरफ़े हक़ बा बातलां गुफ़तन न दारद हासले।
दर ज़मीने शोर सायब दाना अफ़शानी मकुन ॥ (सायब)

मलीनात्माओं को धर्मोपदेश देना निरर्थक है, "सायब"! तू कल्लर वाली भूमि में बीज मत डाल।

जैसे को तैसा।

कृते प्रतिकृतिं कुर्य्याद्धिंस्ते प्रतिहिंसितम्।
न तत्र दोषं पश्यामि दुष्टे दुष्टं समाचरेत् ॥४२॥

(पंच तन्त्र)

उपकार करने वाले के साथ उपकार करे, और हिंसा करने वाले के साथ हिंसा करे, दुष्ट के साथ दुष्टता करे, इस में मैं कोई दोष नहीं देखता हूं॥

जो लायक जिहि भांति को, तासों तैसी होय।
सज्जन सो न बुरी करै, दुर्जन भली न कोय॥ (वृन्द)

با بداں بدباش و با نیکاں نکو،
جائے گل گل باش و جائے خار، خار۔

बा बदां बद बाश व बा नेकाँ निको।
जाए गुल गुल बाश व जाए ख़ार ख़ार॥

बुरे के साथ बुरा और अच्छे के साथ अच्छा बनना चाहिये अर्थात फूल के स्थान में फूल और कांटे के स्थान में कांटा—

हिलमिल जाने तासों मिल के जनावे हेत,
हित को न जाने ताको हितु न विसाहिये।
होय मग़रूर तापै दूनी मग़रूरी कीजै,
लघु है चले तो तासों लघुता निवाहिये॥

"बोधा कवि" नीति को निवेरा यहि भांति अहै,
आप को सराहै ताहि आप हू सराहिये।
दाता कहा सूर कहा सुन्दर सुजान कहा,
आप को न चाहै ताके बाप को न चाहिये॥

जो मनुष्य तेरे साथ सच्ची प्रीति रखता है उस के साथ तू भी सच्ची प्रीति रख और पेट पापी के साथ * ऊंट से भी अधिक पेट पापी बन। (सलाह-उद्दीन सफदी)

† दुर्जन लोग बुराई के बदले बुराई से ही शान्त रहते हैं, भलाई के बदले भलाई करने से नहीं।

कृतमपि महोपकारं पय इव पीत्वा निरातङ्कम्।
प्रत्युत हन्तुं यतते काकोदरसोदरः खलो जगति

(भामिनी विलास)

सर्प के समान संसार में खल मनुष्य अपने ऊपर किये गये महदुपकार को भी दुग्ध सदृश निर्भय पान करके उलटा (उपकार करने वाले के) प्राण लेने का यत्न करते हैं।

---

* ऊंट के साथ यदि कोई ज़ियादती करे तो वह उस को भुलाता नहीं, और समय पड़ने पर अपना कीना निकाल लेता है, इसी लिये जो मनुष्य पेट पापी होते हैं, उन को "शुतर कीना" कहा जाता है। अर्ब में ऊंट अधिक होते हैं, अतएव अरबी कवियों का ऐसे उदाहरण देना स्वाभाविक है

† "शाम्येत्प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः" (कुमार सम्भव)

नीचों से उपकार का फल उपजे अपकार।
दूध पिलाये सर्प को उगले विष फुंकार॥ (वृन्द)

व्योमनि स वासं कुरुते चित्रं निर्माति सुन्दरं पवने। रचयति रेखाः सलिले चराति खले यस्तु सत्कारम् ॥४४॥ (भामिनी विलास)

जिसने खल का सत्कार किया, उसने मानों आकाश में वास किया, पवन में सुन्दर चित्र खींचा, और पानी में रेखा बनाई।

نکوئی بابداں کردن چنانست،
کہ بدکردن بجائے نیک مرداں– (سعدی)

निकोई बावदां करदन चुनानस्त।
कि वद करदन वजाये नेक मरदां॥ (सादी)

खलों के साथ नेकी करना ऐसा ही है जैसा कि भद्र पुरुषों साथ बुराई करना॥

धूर्तेषु मायाविषु दुर्जनेषु स्वार्थैकनिष्ठेषु विमानितेषु। वर्तेत यः साधुतया स लोके प्रताय्यते मुग्धमतिर्न केन॥४५॥

(भामिनी विलास)

जो धूर्त है जो मायावी है, जो दुर्जन है, जो स्वार्थ रत है, जो विमानत है, उस के साथ जो मनुष्य साधुता अर्थात

सद्व्यवहार करता है, उस मूढ़ को इस संसार में कौन नहीं ठगता, कौन उसे धोखा नहीं देता, कहां उसके साथ छल नहीं किया जाता, सारांश यह है, कि धूर्तों के साथ सद्‌व्यवहार करना अनुचित है।

अधम खलों में, साधुता के समान।
विफल सकल जाता, श्रेष्ठ वर्ताव जान॥
जब तक उन को तो, ताड़ना दी न जाती।
तब तक उन की धी है, ठिकाने न आती॥
(मैथिलीशरण गुप्त)

مکن بابداں نیکی اے نیک بخت،
که درشوره ناداں نشاند درخت۔ (سعدی)

मकुन बाबदां नेकी ऐ नेक बख़्त।
कि दर शोरा नादां नशानद दरख़्त॥ (सादी)

ऐ भले पुरुष ! तू खल मनुष्यों के साथ भलाई मत कर, क्योंकि कल्लर में वृक्ष लगाना मूर्खता है।

सत्संगति।

कान्तार भूमिरुह मौलि निवासशीलाः।
प्रायः पलायनपरा जनवीक्षणेन॥
कूजन्ति तेऽपि हि शुकाः खलु रामनाम।
सङ्गः स्वभाव परिवर्तविधौ निदानम्॥२६॥

वन के वृक्षों की शाखों पर बैठने वाले तोते जो मनुष्य को देखते ही उड़ जाते हैं, वह भी संगति के प्रभाव से राम नाम का उच्चारण करने लग पड़ते हैं।

साधु असाधु सदन सुक सारी।
सुमरहिं राम देहिं गनि गारी॥
सठ सुधरहिं सत संगति पाई।
पारस परस कुधातु सुहाई॥
गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा।
कीचइ मिलइ नीच जल संगा॥
सोइ जल अनल अनल संघाता।
होइ जलद जग जीवन दाता॥
धूमउ तजै सहज करुआई।
अगर प्रसंग सुगंध बसाई॥
बिनु सतसंग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू।
लोक विदित जाने सब काहू॥ (तु० दा०)

केवल साधु सङ्ग के बल से,
नीच नीचता को खोता है।
ज्यों हिल मिलकर मलयाचल से,
निम्ब वृक्ष. चन्दन होता है॥

पामर भी सुसंग में पड़ कर,
शीघ्र साधु सा हो जाता है।
जैसे मानव मुख से सुन कर,
तोता हरि यश को गाता है॥

(रामचरित उपाध्याय)

गुणं गुणज्ञेषु गुणं भवन्ति,
ते निर्गुणां प्राप्य भवन्ति दोषाः।
सुस्वाद तोयाः प्रभवन्ति नद्यः।
समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः॥४७॥

गुण गुणीजनों के पास गुण हो जाता है, परन्तु वही गुण दुर्गनों के पास दोष वन जाता है। जैसे नदी का मीठा जल समुद्र में पहुंच कर खारी होजाने से पीने के योग्य नहीं रहता।

उत्तम जन से मिलत ही, अवगुण सो गुण होय।
घन संग खारो उदधि मिल, वरसै मीठो तोय॥ (वृन्द)

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाँति एक गुन तीन।
जैसी संगति वैठिए तैसोई फल कीन॥ (रहीम)

मलय की संगति से चन्दन ह्वै जात बन,
पारस लगे से लोह सोना होय जात है।
नल के सहारे नीर चढ़त अकास पर,
फल संग पात एक भाव से विकात है॥

महा गुणवान "नारायण" की सुसंगति से,
मन्द मति "राम कवि" सुकवि कहात है।
संगति सुधार देत दुष्ट औ कुकर्म्मियों को,
संगति ही फूटी तकदीर को बनात है॥

उत्तमानां प्रसंगेन लघवो यान्ति गौरवम्।
पुष्पमाला प्रसंगेन सूत्र शिरासि धार्यते॥४८॥

(वल्लभदेव)

बड़े लोगों के साथ रहने से छोटे लोगों का गौरव बढ़ जाता है। फूल की माला के साथ धागा भी सिर पर चढ़ जाता है।

होय शुद्ध मिटि कलुषता, सत संगति को पाय।
जैसे पारस को परस, लोह कनक ह्वै जाय॥
उत्तम जन के संग में, सहजै ही सुख भास।
जैसे नृप लावै अतर, लेत सभा जन वास॥
सुधरो बिगर कुसंग ते, सत सँगति को पाय।
वास बसी कर हींग की, जीरा सँग मिटि जाय॥ (वृन्द)

कुसंग के दोष ।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्ख जनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥४९॥

(भर्तृहरि)

भ्रमन भलो गिरिघन बिपिन, वनचर सँग तजि स्वर्ग ।
इन्द्रभवन हूं है बुरो जो मूरख संसर्ग ॥
कबीर संगत साध की जौ की भूसी खाय ।
खीर खांड भोजन मिले साकट संग न जाय ॥

सिहन के वन में बसिये, जल में घुसिये कर में बिछू लीजे ।
कान खजूरे कुं कान में डारिके, सांपन के मुख आंगुरी दीजे ॥
भूत पिशाचन में वसिये, और जैरकुं घोल हिलाहल पीजे ।
जो जग चाहे जियो "रघुनन्दन" मूर्ख मित्र कबू नहीं कीजे ॥

ترا اژدها گر بود یار غار
ازاں بہ کہ جاہل بود غمگسار — (سعدی)

तुरा अज़दहा गर बुवद यार गार ।
अज़ाँ वेह कि जाहिल बुवद ग़मगसार ॥ (सादी)

अजगर सर्प को मित्र बनाना अच्छा है, परन्तु बुद्धिहीन मित्र अच्छा नहीं है ।

दहने शेर में जा बैठिये लेकिन ऐ दिल ।
न हूजिये ख़ुशाने दिलाज़ार के पास ॥ (ग़ालिब)

उमर ख़य्याम की एक रूबाई का अनुवाद ह्विन्फील्ड (Whinfield) ने इस प्रकार किया है।

To wise and worthy men your time devote.
But from the worthless keep your walk remote.

Dare to take poison from a sage's hand,
But from a fool refuse an antidote.

सज्जनों और बुद्धिमानों के साथ अपना समय व्यतीत करो। बेकार मनुष्यों के साथ घूमने से भी बाज आओ। महात्मा के हाथ से विष लेना बुरा नहीं है, परन्तु मूर्ख के हाथ से विष को दूर करने की औषधी का लेना भी बुरा है॥

हीन सेवा न कर्तव्या कर्तव्यो महदाश्रयः।
पयोऽपि शौण्डिकी हस्ते वारुणीत्यभिधीयते ५०

ओछे मनुष्य की सेवा करना योग्य नहीं है, महापुरुष का आश्रय लेना ही कर्तव्य है. कलालिन (शराब बेचने वाले की स्त्री) के हाथ में रक्खे हुये दूध को भी शराब ही कहा जाता है॥

जिहि प्रसंग दूषण लगे, तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत दूध कलाली हाथ॥ (वृन्द)

آب چوں در روغن افتد نالہ خیزد درچراغ
صحبت ناجنس باشد ثمرۂ آزارہا۔

आब चूं दर रौग़न उफ़तद् नाला खेज़द् दर चराग़ ।
सोहबते नाजिन्स बाशद समरए आज़ारहा ॥

जैसे तेल में पानी पड़ने पर शोर मच जाता है इसी तरह बुरी सोहबत का फल दुःखों के बिना और कुछ नहीं होता ॥

वरं सखेसत्पुरूषापमानितो न नीच संसर्ग गुणैरलंकृतः । वराश्वपादेन हतो विराजतेन न रासभस्यो परि संस्थितो नरः ॥५१॥

हे मित्र ! श्रेष्ठ पुरुष से अपमानित किया गया मनुष्य अच्छा परन्तु नीच जन के संसर्ग में गुणों से अलंकृत पुरुष भी अच्छा नहीं है, श्रेष्ठ घोड़े के पादाघात (दुलत्ते) से मरना अच्छा है,परन्तु गधे की पीठ पर बैठा हुआ मनुष्य शोभा नहीं पाता ॥

सोहत बुध अपमान नर नहीं नोच सतकार ।
सजैं तुरंगम लात तैं नहिं खर पीठ सवार ॥

(दीनदयालगिरि)

दुरजन की करुणा बुरी, भलो सजन को त्रास ।
सूरज जब गरमी करे तब बरसन की आस ॥

(तुलसीदास)

پائے درزنجیر پیش دوستاں،
بہ کہ بابیگاناں در بوستاں۔ (سعدی)

पाए दर ज़ंजीर पेशे दोस्ताँ ।
बेह कि बा बेगानगां दर बोस्ताँ ॥ (सादी)

मित्रों के सामने पाओं में बेड़ियां पड़ी हुई अच्छी हैं, परन्तु बेगानों के साथ फुलवाड़ी का निवास भी बुरा है, यहां दोस्त और बेगाने का अभिप्राय सज्जन और दुर्जन से है ॥

खलः करोति दुर्वृतं नूनं फलति साधुषु ।
दशाननोऽहरत्सीता बन्धनं च महोदधेः ॥५२॥

दुष्ट पुरुष अनुचित कर्म करता है तो उसका फल साधुजनों को भोगना पड़ता है जैसे कि रावण ने सीता को हरण किया और पुल बांधा गया बेचारे समुद्र पर—

दुर्जन के संसर्ग तें, सज्जन लहत कलेश ।
ज्यों दशमुख अपराध तैं बन्धन लह्यो जलेश ॥
कुटिल संग "रहीम" कहि. साधू बचते नाहिं ।
ज्यौं नैना सैना करें, उरज उमेठे जाहिं ॥

वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कवि गोपाल शरणसिंह ने कहा है:—

यद्यपि लोक संतप्त किया था रवि ने सारा ।
पर मेघों से घिरा निशापति भी बेचारा ॥
जनक नन्दिनी हरी गई थी दशमुख द्वारा ।
पर बांधा था गया वृथा रत्नाकर प्यारा ॥
यद्यपि अविवेकी मनुज ही करता पापाचार है ।
पर निरपराध नर भी वृथा चखता कुफल अपार है ॥

सछिद्र निकटे वासो न कर्तव्या कदाचन।
घटी पिबती पानीयं ताडयते झलरी यथा ५३

छिद्रावन के निकट महं कबहुं न बसिये जाय।
पानी तो पीवे घड़ी झालरि पीटी जाय॥
पाछे पर न कुसंग के "पद्माकर" यह डीठ।
पर धन खाय कुपेट ज्यों पिटत विचारो पीठ॥
साधुन हूं को होय दुख संग गहे अतिखोट।
घटी पात्र जल को हरै परै घड़ी पर चोट॥
(दीनदयाल गिरि)

सोहबत से हो बदों की ज़रर असल नेक को।
होता है रंग गर्द से तबदील आब्र का॥ (नसख़)
कागहूकी सोबती जो कोकिला कूं भई आय,
श्याम रंग भयो सो सुपेत रंग ना धरे।
अनिल की सोबती जो भई आय बसतो कूं,
छोरकें उजर बन रही बास में धरे॥
रावन की सोबती जो भइ है समुद्रन को,
भई सेतु बीच में सो, बांदरने बांधरें।
जो नहीं तो कोउसों बीगरे अमेट जसु,
सोबत कुसोबत में सुमति न सुधरे॥ (जसुराम)

सेवितव्यो महा वृक्षः फलच्छाया समन्वितः।
यदि दैवात्फलं नास्ति छाया केन निवार्यते ५४

फल और छाया से युक्त महान वृक्ष ही सेवा करने योग्य है क्योंकि दैवयोग से यदि फल जाता रहे तो छाया को कौन रोक सकता है।

रहिये लटपट काट दिन वरु घामें में सोय।
छाँह न वाकी बैठिये जो तरु पतरो होय॥
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन वहै बयारि टूटि तब जड़ से जैहै॥
कहि "गिरिधर" कविराय छांह मोटे की गहिये।
पत्ते सब झड़ जायं तऊ छाया में रहिये॥

अहो दुर्जन संसर्गान्मान हानिः पदे पदे।
पावको लोह-सङ्गेन मुद्गैरभिहन्यते ॥५५॥

दुष्ट की संगति में पद पद पर हानि ही होती है अग्नि जब लोहे का संग करती है तो हथोड़ों से कूटी जाती है।

पड़ कुसंग में पड़त है निर्मल पर भी मार।
पावक लोहे से मिलत, पीटत ताहि लोहार॥ (वृन्द)

अति खल की संगति करने से जग में मान नहीं रहता है।
लोहे के संग में पड़ने से घन की मार अनल सहता है॥
(रामचरित उपाध्याय)

लोहे की कुसंगति से आग पर मार पड़े।
खट्टे की कुसंगति से दूध फट जात है॥

बांस की कुसंगति से जल जात लाखों वृक्ष।
कीच की कुसंगति से कूप अट जात है ॥
दुष्ट की कुसंगति समाज को विनाश करे।
क्रूर की कुसंगति से सूर कट जात है ॥
"राम" कवि देखा है विचार कर वारवार।
नीच की कुसंगति से मान घट जात है ॥
नाक़िसों की दोस्ती दे दीनो ईमान को उजाड़।
पूछ लो जाकर गुलिस्ताँ से खिज़ाँका इख़्तलात॥ (सोज़)
दिला नाजिन्स की सोहबत भी तुफ़ां गुल खिलाती है।
करे नौरंगियां डालें अगर पानी में रौग़न को॥ (वज़ीर)

दुर्जनो दूषयत्येव सतां गुणगणं क्षणात्।
मलिनी कुरुते धूमः सर्वथा विमलाम्बरम् ॥५६॥

दुर्जनों के संसर्ग से गुण भी क्षण भर में दोष बन जाता है जैसे कि धुआं निर्मल आकाश को मलिन कर देता है।

होत सुसंगति सहज सुख, दुख कुसंग के थान।
गंधी और लोहार की देखो वैठ दुकान॥
हिये दुष्ट के वदन ते मधुर न निकसे वात।
जैसे करुई वेल के को मीठे फल खात॥ (वृन्द)

करिये वात न तन परश, खल ढिग जैये नाहिं।
कटुक नीम तर जात ही, मुख कडुये ह्वै जाहिं॥

असर सोहबत का होता है यह है मशहूर दुनियां में।
जो बैठा पास आग के आंच उसको आई है॥

* हीयते हि मतिस्तात हीनैःसह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥५७॥

खोटी बुद्धिवालों के समागम से बुद्धि हीन होती है, समान बुद्धि वालों के सहवास से बुद्धि समान रहती है, और बड़ों की संगति करने से बुद्धि भी विशाल होती है।

को न कुसङ्गति पाइ नसाई।
रहइ न नीच मते चतुराई॥ (तुलसीदास)

यदि सत्सङ्गनिरतो भविष्यसि भविष्यसि।
अथ दुर्जन संसर्गे पतिष्यसि पतिष्यसि ॥५८॥

यदि तुम सत्सङ्ग में प्रीति करोगे, तो होगे २ अर्थात

---

* असतां संगदोषेण साधवो यान्ति विक्रियां।
दुर्योधन प्रसंगेन भीष्मो गोहरणे गतः॥ वल्लभदेव॥

दुष्टों का सङ्ग करने से सज्जनों में भी दोष आजाता है जैसे कि दुर्योधन के साथ भीष्मपितामा को भी गायें चुरानी पड़ी थीं। महाभारत वन पर्व में इसका विस्तार पूर्वक उल्लेख है।

होनहार कहलाओगे और यदि दुर्जन की सङ्गत करोगे तो गिरोगे गिरोगे और पतित हो जाओगे।

صحبت صالح ترا صالح کند ،
صحبت طالح ترا طالح کند -

सोहबते सालह तुरा सालह कुनद।
सोहबते तालह तुरा तालह कुनद॥

भले पुरुषों की संगति से भला और कमीने मनुष्यों का सङ्ग करने से तू बुरा बन जायेगा।

बैठिये न जहां तहां कीजे न कुसङ्ग सङ्ग,
कायर के सङ्ग शूर भागे पर भागे है।
काजल की कोठड़ी में कैसोही जतन करे,
काजल की एक रेख लागे पर लागे है॥
देखो एक बागन में फूलन को बासन में,
कामिनीके सङ्ग काम जागे पर जागे है।
कहेते "बिहारीलाल" कठिन विराग पंथ,
सोबतको प्रेम फंद लागे पर लागे है॥

———

मित्र और कुमित्र ।

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्र लक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥५१॥

(भर्तृहरि)

करे पापतें दूरनित, हितकी बात बताय ।
गुप्त विषय को लुप्त करि, गुण को दे प्रगटाय ॥
आपद में तजिये नहीं, वस्तु कीजै कुछदान ।
लक्षण उत्तम मित्रको, सन्तन किये बखान ॥

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा ।
गुन प्रगटई अवगुनहि दुरावा ॥
देत लेत मन संक न करई ।
बल अनुमान सदा हित करई ॥
विपति काल कर सतगुन नेहा ।
स्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥ (तुलसीदास)

बांधव समान सदाचित में सहाय अति,
दोष को दुराई गुन जाहिर जनावे है ।
हित को करत और अहित हरत सदा,

व्यसन बुराई सदा बुद्धि तें बिलावे है ॥
आपति में आय करे सकल सहाय शुभ,
सोक को नसाइ सदा आनन्द उपावे है।
"गोविंद" कहत ऐसे मित्रन के मिलेवे तें,
सुखिया संसार माहि और को कहावे है ॥

आपस में है जो सब से रवादार दोस्ती।
कहिये उसी को यारो मददगार दोस्ती ॥
जो रंजोगम में हाज़रो ग़ायब हो इक तरह।
मिलिये उसी से वह है सजावारे दोस्ती ॥ (तराब)

मित्र अत्यंत शुद्ध और पवित्र होना चाहिये इस पर कविवर "केशव" की उक्ति भी मनन करने योग्य है—

राजत रंच न दोष युत कविता बनिता मित्र ।
बुंदक हाला परत ज्यौं गङ्गाघट अपवित्र ॥

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वा तु मित्रापदम् ।
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥

(भर्तृहरि)

पय जल तें मिल करत है, निज गुणरूप समान।
क्षीर ताप लखि नीर पुनि, दियो अग्नि में प्रान ॥

पुनि पय आपति मित्रलखि, चाह्यो पतन कृशान।
जल छीटे लहि शान्त भौ, मित्र मिलन अनुमान॥
सत पुरुषों की जगत में, होत ऐसही प्रीति।
करी उचित ही तोय पै, नहीं नई यह रीति॥

दास परस्पर प्रेम लखो, गुन छीर के नीर मिले सरसातु है।
नीर वेंचावत आपने मोल, जहां जहां जाई के विकातु है॥
पावक जारन छीर लगे, तब नीर जरावत आपनो गातु है।
नीर की पीर निवारिबे कारन, छीर घरिहिं घरिहिं उफनातु है॥
(भिखारीदास)

प्रीति सीखिवो चाहिये छीर नीर के पास।
वह दै कीमति मधुरछवि वह सङ्ग सहै हुतास॥ (दी० गि०)

शत्रुर्दहति संयोगे वियोगे मित्रमप्यहो।
उभयोर्दुःखदायित्वं को भेदो शत्रुमित्रयोः॥६२॥

शत्रु और मित्र दोनों ही दुःखदायक हैं, इनमें कोई भेद नहीं है, क्योंकि शत्रु मिलते समय और मित्र बिछुड़ते समय दुःख देते हैं।

मिलत एक दारुण दुःख देहीं।
बिछुड़त एक प्राण हरि लेहीं॥ (तु० दा०)

दुर्लभाः गुणिनाः शूराः दातारश्चाति दुर्लभाः।
मित्रार्थे त्यक्तसर्वस्वो बन्धुस्तवैं स दुर्लभः॥६३॥

गुणी, शूरवीर, और दाताओं का मिलना दुर्लभ है। ऐसे मित्र का मिलना और भी दुर्लभ है जो अपने मित्र के लिये सर्वस्व त्याग दे।

ऐसा कोई ना मिला सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपे मिरग ज्यों सुने वधक का गीत॥

(तु० दा०)

اے کہ ہمراہ موافق بہ جہاں مے طلبی،
آں قدر باش کہ عنقا ز سفر باز مے آید -

ऐ कि हमराह मुआफ़िक़ व जहाँ में तलबी।
आँ क़द्र बाश कि * अन्क़ा ज़ सफ़र बाज़ मे आयद॥

संसार में यदि तू सच्चा मित्र तलाश करना चाहता है, तो अन्क़ा के सफ़र से लौट आने तक प्रतीक्षा कर, अभिप्राय यह है कि, न अन्क़ा वापस आयेगा और न सच्चा मित्र मिलेगा।

खुदा मिले तो मिले आशना नहीं मिलता।
किसी का कोई नहीं दोस्त सब कहानी है॥
अन्क़ा को गरदे सुरख़, पारस, अकसीर।
यह सब मिलते हैं, दोस्त कम मिलता है॥

बन्धुस्त्रीभृत्यवर्गस्य बुद्धेः सत्वस्य चात्मनः।
आपन्निकर्षपाषाणे नरो जानाति सारताम्॥६४॥

(हितोपदेश)

---

* एक काल्पनिक पक्षी जिसका नाम तो बहुत प्रसिद्ध है, परन्तु पता कोई नहीं।

मित्र, स्त्री, नौकर, चाकर, बुद्धि, बल और शरीर के सार को विपत्ति रूप कसौटी पत्थर से पुरुप जान लेता है, अर्थात् कसौटी पर लगाने से जिस प्रकार सोने के गुण, दोषों का ज्ञान होजाता है, इसी प्रकार विपद् के समय भली भान्ति समझ में आजाता है कि, कौन अपना हित करने वाला है।

धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी। आपदकाल परखियहि चारी॥
(तुलसीदास)

"रहिमन" विपता तू भली, जो थोड़े दिन होय।
हितु अनहितु या जगत में, जान पड़त सब कोय॥

आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत्।
वृद्धिकाले तु संप्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद्भवेत्॥६५॥
(पञ्चतंत्र)

सच्चा मित्र तो वही है, जो आपत्ति काल में सहायक हो। अच्छे समय में तो दुर्जन भी मित्र बन जाते हैं।

دوست مشمار آنکه درنعمت زند،
لاف یاری و برادر خواندگی-
دوست آں باشد که گیرد دست دوست،
درپریشاں حالی و درماندگی- (سعدی)

दोस्त मशुमार आँकि दर नामत ज़नद।
लाफ़ यारो ओ बरादर ख्वांदगी॥
दोस्त आँ बाशद कि गीरद दस्ते दोस्त।
दर परेशां हालीओ दर मांदगी॥ (सादी)

तू उसको मित्र न समझ, जो सुख और सुदिन में मित्रता की डींग मारता है, सच्चा मित्र तो वह है, जो दुःख और संकट में सहायता करता है।

साईं सब संसार में मतलब का व्यौहार।
जब लग पैसा गांठ में तब लगि ताको यार॥
तब लगि ताको यार यार सङ्ग ही सङ्ग डोले।
पैसा रहा न पास यार मुख से नहीं बोले॥
कह "गिरिधर" कविराय जगतको याही लेखा।
करत बेगरज़ो प्रीति यार हम विरला देखा॥

A friend in need.
Is a friend indeed.

वास्तवमें मित्र वही है, जो ज़रूरतके समय मित्रता करे।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥६६॥

परोक्ष में काम बिगाड़ने वाले और प्रत्यक्ष में प्रियवादी मित्र को "पयोमुख * विषकुम्भ" की भान्ति त्याग देना उचित है।

आगे कह मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई॥
(तुलसीदास)

---

* ऐसा घड़ा जिसमें नीचे तो सब विष भरा हो और मुंह पर थोड़ा सा दूध डाला हुआ हो।

पीछे निन्दा जो करे, औ मुख पै मनमोन ।
तजिये ऐसे मित्र को, जैसे "ठग † पकवान" ॥
(दीनदयाल गिरी)

ऊपर दरसे विमल सी, अन्तर अनमिल आंक ।
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फांक ॥ (वृन्द)

बाहिर ते वेश प्रेम झूठहि जनाय अति,
भीर पर काम कदि आप नहिं आवे है ।
साथ में सदाय निज खान पान पाय पुनि,
आप के अगार एक वेर न बतावे है ॥
मुख तें मधुर बैन बोलत बहुत पर,
पाछल तें बात बुरी आपनी जनावे है ।
"गोविद" कहित ऐसे मतलबी मित्रन कों,
सङ्ग एक छिन नहीं ईश्वर रखावे है ॥

जो दोस्ती के परदा में करता हो दुश्मनी ।
उस से अबस कोई हो तलबगारे दोस्ती ॥
आदम का दोस्तदार हो शैतां की तरह जो ।
हम को तो ऐसे शख्स से है आरे दोस्ती ॥ (तराव)
उसे अय्यार पाया यार समझे "ज़ौक़" हम जिस को ।

---

† असभ्य लोग विवाह आदि उत्सवों पर सम्बन्धियों का मखौल उड़ाने के लिये लीद अथवा लदोड़ों पर खांड चढ़ा देते हैं, इसीका नाम "ठगपकवान" है ।

जिसे यहां दोस्त बनाया हमने जाना वह अदू निकला ॥
गरज़ की मुहब्बत गरज़ की मदारा।
अदावत निहां दोस्ती आशकारा ॥ (हाली)

मैत्री और विरोध।

*ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम्।
तयोर्मैत्री विरोधश्च नतु पुष्टविपुष्टयो ॥६७॥
(पञ्च तन्त्र)

जिन दोनों का समान धन और समान कुल हो, उन्हीं का वैर और मित्र भाव होना चाहिये, सबल और निर्बलों की मैत्री तथा विरोध योग्य नहीं है।

प्रीति विरोध समान सन करिय नीति अस आहि।
जो मृगपति वध मेडुंकहि भलकि कहइ कोउ ताहि ॥
(तुलसीदास)

कै सम सों कै अधिक सों लरिये करिये वाद।
हारे, जीते होत है दोऊ भान्ति सवाद ॥ (वृन्द)

उलफ़त है बिरादरी में ज़ेबा।
निस्बत है बराबरी में ज़ेबा ॥ (नसीम)

---

* "तयोर्विवाहः सख्यं च" अर्थात् परस्पर मैत्री और विवाह समान कुल वालों का ही ही उचित है। ऐसा पाठ भी देखने में आता है।

मृगा मृगैः सङ्ग मनुव्रजान्ति गावश्च गोभि-
स्तुरगा स्तुरंगैः। मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः
समानशील व्यसनेषु सख्यम् ॥ ६८ ॥ पंचतन्त्र

मृग मृगों के साथ सङ्ग करते हैं, गौ गोवों के साथ घोड़े घोड़ों के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ, बुद्धिमान् बुद्धिमानों के साथ सङ्ग करते हैं। क्योंकि मैत्री अपने तुल्य स्वभाव और व्यसन वालों की ही होती है।

वेद को वैद गुनी को गुनी, ठग को ठग ठूमक को मन भावे।
काग को काग मराल मरालको, आंध गधा को गधा खजुलावे॥
"कृष्ण" भने बुधको बुध त्यों, और रागीको रागी मिले सुखगावे।
ज्ञानी सो ज्ञानी करै चरचा, लबरा के ढिग लबरा सुख पावे॥
पण्डित पण्डित सों खल मण्डित, सायर सायर सों सुख माने।
सन्तहि सन्त भनन्त भले, गुनवन्तहि को गुनवन्त वखाने॥
जाकहँ जापहँ हेत नहीं, कहिये सो कहा तिन की गति जाने।
सूर को सूर सती को सती, और "दास"जतीको जती पहिचाने॥
कामीसो कामी विलोक सुखी, अरू ज्वारी को ज्वारी मिले हरषावे
जाको है जैसा सुभाव सदा, तिहि के अनुसार हि आनन्द पावे॥

کند ہم جنس باہم جنس پرواز ،
کبوتر با کبوتر باز با باز –

कुनद हमजिन्स या हमजिन्स परवाज़।
कबूतर बा कबूतर बाज़ या बाज़॥

पक्षी अपनी ही श्रेणी के साथ उड़ते हैं, जैसे कबूतर कबूतर के साथ और बाज़ बाज़ के साथ।

Birds of the same feather flock together,
समान परों वाले पक्षी इकट्ठे उड़ते हैं।

यद्यपि रटति सरोषं मृगपतिपुरतोऽपि मत्तगोमायुः। तदपि न कुप्यति सिंहोऽप्यसदृशपुरुषेषु को कोपः ॥६९॥

चाहे पागल गीदड़ सिंह के सामने आकर ज़ोर से भवके, परन्तु सिंह को क्रोध नहीं आता। जो अपने जैसा नहीं उस पर क्रोध कैसा।

जे उत्तम ते असम सों, धरत न रिस मन माहिं।
घन गरजैं हरि हूं करैं, स्यार बोलि सुनि नाहिं॥
कीजै आप समान सों, वैर प्रीति व्यवहार।
कब हूं न कीजे नीच सों चरचा कथा विचार॥
निवल जान कीजै नहीं कबहू वैर विवाद।
जीते कछु शोभा नहीं, हारे निन्दा वाद॥ (वृन्द)

कुलीन उससे मुठभेड़ करता है, जो उसकी टक्कर का हो, परन्तु नीच अपने से भी नीच पर हाथ बढ़ाता है।

(इस्माईल-इब्न-अबीबकर)

प्रेम आकर्षण ।

गिरौमयूरा गगने पयोदा लक्षान्तरेऽर्कश्च जलेषु पद्मम् । इन्दुर्द्विलक्षं कुमदस्य वन्धुर्योयस्यमित्रं नहि तस्य दूरम् ॥७०॥

मोर जङ्गल में होता है, और बादल गगन में, सूर्य्य तथा चन्द्र आकाश में होते हैं, और कमल व कुमुदिनी जल में। जो जिसका मित्र होता है, वह उसके लिये दूर नहीं होता।

जल में बसै कमोदिनी चंदा बसै अकास।
जो है जा का भावता सो ताही के पास॥ (कबीर)
तुलसी कँवलन जलबसै,रवि ससि बसै अकास।
जो जाके मन में बसै, सो ताही के पास॥ (तु० सा०)

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्यमनसिस्थितः।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः॥७१

(चाणक्य)

जो जिस के दिल में रहता है अर्थात जो जिससे प्रेम रखता है, वह दूर रहने पर भी उसके निकट ही है, और जो जिसके हृदय में नहीं है, वह समीप रहकर भी उससे दूर ही है

सौ जोजन साजनबसै मानो हृदय मंझार।
कपट सनेही आंगने जानु समुन्दर पार॥ (कबीर)
मन भावन के मिलनको सुख को नाहि न छोर।
बोलि उठै नचि नचि उठै, मोर सुनत घन घोर॥ (वृन्द)

रुचि वैचित्र्य ।

दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सुधापि मधुरैव ।
तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम् ॥७२॥

दही मीठा है, शहद मीठा है, दाख भी मीठी है और अमृत भी मीठा है, परन्तु जिसका मन जहां लगा हुआ है, उसके लिये वही मीठा है ।

मीठी कोऊ वस्तु नहीं मीठी जाकि चाहि ।
अमली मिसरी छांडके आफू खात सराहि ॥ (वृन्द)
महादेव अवगुन भवन, विष्णु सकल गुन धाम ।
जेहिकर मन रम जाहि सन, तेहि तेहि सनकाम ॥ तु० दा०
आशिक के दिल को ठडक जो तेरी आग में हैं ।
देता नहीं वह लज्जत प्यासे को सरद पानी ॥ (हाली)

Fair is not fair, but that which pleaseth.

सुन्दर सुन्दर नही है, किन्तु वही सुन्दर है जो अपने मन को भावे ।

न वेति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति । यथा किराती करिकुम्भजातां मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम् ॥७३॥

जो जिसके उत्कृष्ट गुणों को नहीं जानता फिर वह

यदि उसकी निन्दा करता है। तो इस में क्या आश्चर्य है, जैसे किराती अर्थात भील की स्त्री हाथियों के गंडस्थलों से उत्पन्न हुए मोतियों को त्यागकर रत्तकों को पहनती है।

जो जेहि भावे सो भलो गुन का कछु न विचार।
तज गज मुक्ता भीलनी पहिरति गुंजा हार॥ (वृन्द)

गुन अव गुन जानन सब कोई।
जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥ (तु॰ दा॰)

कर्म हीन ज्ञान और उपदेश।

यथाखरश्चन्दन भारवाही भारस्य वेता न तु चन्दनस्य। तथैव शास्त्राणि बहून्य धीत्य क्रिया विहीनाः खरवद्वहन्ति ॥७४॥ (सुश्रुत)

जैसे चन्दन का भार उठाने वाला गधा केवल यह जानता है। कि मेरे ऊपर बोझ है, वह चन्दन के गुणों को सर्वथा नहीं जानता। इसी प्रकार वह मनुष्य जिसने यद्यपि बहुत से शास्त्र पढ़े हैं, परन्तु उन के अनुसार कर्म न करने के कारण केवल बोझ लादने वाले गधे की भान्ति है. अर्थात उसका पढ़ा लिखा व्यर्थ है।

نہ محقق بود نہ دانش مند ، چارپائے بروکتابے چند —
آں تہی مغز راچہ علم و خبر ، کہ براوہیزم است یا دفتر —
(سعدی)

न मुहक़्क़िक़ बुवद न दानिशमन्द, चार पाए वरो कतावे चन्द ।
आं तही मग़ज़रा चे इल्मो ख़बर, कि वर ओ हेज़म अस्त या दफ़॥

चौपाये पर कितनी ही पुस्तकें लाद दो, उससे उसका बुद्धिमान और विद्वान होना तो दूर रहा, वह यह भी नहीं जान सकता कि उसके ऊउर लकड़ियां लादी हैं या पुस्तकें।

न हो जिस में अदब और हो कतावों से लदा फिरता ।
"ज़फ़र" उस आदमी को हम तसव्वर बैल करते हैं ॥
है मैहज कताब लादने का गधा ।
या इल्मपै तू ने अमल भी है किया ॥
गर इल्म नहीं है वा अमल ऐ नादान ।
तो तू ने पढ़ा लिखा डबोया सारा ॥ (मेहर)

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्सुमहात्मनः ॥७५॥

दूसरों के प्रति उपदेश करने में सब मनुष्यों को पाण्डित्य सुलभ है, परन्तु निज धर्म में अनुष्ठान किसी सौभाग्यशाली महात्मा का ही हुआ करता है ।

पर उपदेश कुशल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥
(तुलसीदास)

ہر کسے ناصح برائے دیگراں ،
ناصح خود یا فتم کم درجہاں - (سعدی)

हर कसे नासह वराए दीगरां ।
नासह ख़ुद याफ़तम कम दर जहां ॥ (सादी)

दूसरों के लिये तो हर एक उपदेष्टा है, परन्तु अपने आप को उपदेश देने वाले संसार में बहुत थोड़े हैं।

If every man looks to his own reformation,
How very easy to reform a nation ;

यदि हर एक मनुष्य अपने आपको सुधारने का प्रयत्न करे तो सारी कौम का सुधर जाना बहुत सहल है।

परोपदेशे वेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति वै ।
विस्मरन्तीह शिष्टत्वं स्वकार्ये समुपस्थिते ॥७६॥

दूसरे को उपदेश देते समय सब श्रेष्ठ अर्थात्, सत्पुरुष बन जाते हैं, परन्तु, अपने कार्य के उपस्थित होने पर शिष्टता को भूल जाते हैं।

कहवो कछु करवो कछु, है जग की विधि दोय ।
देखन के और खान के, और द्वरद रद दोय ॥
आप कहे नाहिन करे, ताको है यह हेत ।
आप न जावे सासुरे, औरन को सिख देत ॥ (वृन्द)
करनी बिन कथनी कथै अज्ञानी दिन रात ।
कूकर ज्यों भूसित फिरैं सुनी सुनाई बात ॥
कहते सो करते नहीं मुंह के बड़े लबाड़ ।
काला मुंह ले जायेंगे साहिब के दरबार ॥ (कबीर)

واعظاں کیں جلوہ بر محراب و منبر میکنند،
چوں بخلوت مے روند آں کار دیگرے کنند - (حافظ)

वाइज़ां कीं जलवा बर मेहरावो मन्वर मे कुनंद ।
चूं वखिलवत मेरवंद आं कार दीगर मे कुनंद ॥ (हाफ़िज़)

उपदेशक लोग जो वेदी पर बैठ कर उपदेश का चमत्कार करते हैं, जब अकेले होते हैं, तो और ही काम करते हैं।

دیگراں را نصیحت و خود در فضیحت -

दीगराँ रा नसीहत व खुद दर फ़ज़ीहत ।

स्वयं कुकर्म करते रहना और दूसरोंको उपदेश करना।

मैंने इन आंखों से ऐ वाइज़ लवासे वाज़ में ।
जौ फरोशी करते देखे हैं वहुत गन्दम नुमा ॥
दावाये इश्क़ मुहब्बत पै न जाना इन के ।
इनमें गुफ़तार ही गुफ़तार है किरदार नहीं ॥ (हाली)
न जा ज़ाहिर पै ज़ाहिद के कि वातन कुछ नहीं इनका ।
मसल मशहूर है हिन्दी कि मुंह चिकना कलम काली ॥
अस्पीच मज़हवी में यकता हैं शैख़ कैम्प ।
लेकन यह सव ज़वां पै है दिल में कुछ नही ॥

(अकबर)

A man of words not of deeds,
Is like a garden ful of weeds.

जो मनुष्य कहता ही है, और करता नहीं, वह ऐसे बाग़ की मानिन्द है, जो केवल घास फूस से भरा हुआ है।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत
न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
एषः संक्षेपतो धर्मः कामदन्यः प्रवर्तते ॥७६॥

महाभारत अनुशासन पर्व।

ऐसा वर्ताव दूसरों के साथ नहीं करना चाहिये, जो अपने को प्रतिकूल सर्थात दुःखदाय प्रतीत हो, यही सब धर्म और नीतियों का सार है, शेष सब व्यवहार लोभ मूलक हैं।

چو خود را پسندی کسے را پسند ،
تو در زحمتے دیگرے رامبند — (سعدی)

चु ख़ुद रा पसन्दी कसे रा पसन्द।
तो दर ज़हमते दीगरे रा मबन्द ॥ (सादी)

जैसा अपने लिये चाहता है, दूसरे के लिए भी वैसी ही इच्छा कर; दूसरे को दुःख में डालना योग्य नहीं है।

यद्यदात्मनिचेच्छेत् तत्परस्यापि चिन्तयेत्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत ॥७७॥

जो बात अपने लिये अच्छी लगे वही दूसरों के लिये भी अच्छी समझनी चाहिये। परन्तु जो काम अपने को अच्छा न लगे वह दूसरों के साथ भी नहीं करना चाहिये।

آنچه برخود میپسندی ، بردیگراں میپسند —

आंचेबर खुद मपसन्दी बर दीगरां मपसन्द।

जो बात तू अपने लिए पसन्द नहीं करता, दूसरों के वास्ते भी उसे पसन्द न कर।

Do unto others as ye would be done by, (Bible)

जैसा व्यवहार तुम दूसरों से चाहते हो, वैसा ही तुम दूसरों के साथ करो।

आत्मश्लाघा

निजगुणगरिमा सुखाकरः स्यात्स्वयम नुवर्णयतां सतां न ता बत्। निजकर कमलेन कामिनीनां कुचकलशाकललेन को विनोदः॥

(भामिनिविलास)

भद्र पुरुषों को अपने गुण अपने ही मुख से कहना सुखकारी नहीं होता, अपने करकमलों से अपने ही कुचकलशो को स्पर्श करना स्त्रियों को भला कैसे आनन्दित कर सकता है।

आत्म-प्रशंसा से मिलत, नेकहु मान न मोद।
निचकर कुच भीड़े वधू, लहत न मदन विनोद॥

ثنائے خود بخود گفتن نہ زیبد مرد عاقل را ،
چو زن پستان خود مالد کجا لذت شود پیدا ـ

सनाए खुद बखुद गुफ़तन न ज़ेबद मर्द आक़िल रा।
चु ज़न पस्तान खुद मालद कुजा लज़्ज़त शवद पैदा॥

बुद्धिमान मनुष्य को स्वयं अपनी प्रशंसा करना शोभा

नहीं देता, क्योंकि रमणियों का स्वयं अपने कुच मर्दन करना आनन्ददायक नहीं हो सकता।

अद्यापि दुर्निवारं स्तुतिकन्या वहति कौमारम्।
सद्भ्यो न रोचते साऽसन्तस्यै न रोचन्ते ॥७९॥

(आर्या सप्तशती)

स्तुतिरूपी कन्या अभी तक अनिवार्य कौमार भाव को धारण कर रही है, अर्थात उसे अभी तक वर नहीं मिला, कारण यह है, कि जो सत्पुरुष हैं, उन्हें वह अच्छी नहीं लगती, और असत्पुरुष उसे अच्छे नहीं लगते।

माया छाया एक भी विरला जाने कोय।
सन्तों के पाछे फिरे सन्मुख भागे सोय॥ (कबीर)

भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम।
अब जो नफ़रत हम ने की वह बेक़रार आने को है॥

संतःस्वतः प्रकाशन्ते न परतो नृणाम्।
आमोदो नहि कस्तूर्याः शपथेन विभाव्यते ८०

(भामिनि विलास)

सत्पुरुषों के सदगुण स्वयं ही प्रकाश होते हैं, न कि दूसरों के प्रकाश करने से, जैसे कि कस्तूरी की सुगन्ध शपथ खाने से नहीं जानी जाती, अर्थात कस्तूरी की खुशबू स्वतः प्रगट होती है।

مشک آنست که خود بگوئید، نه که عطار بگوئید -

मुश्क आनस्त कि खुद बगोयद ।

न कि अतार बगोयद॥

खुशबू स्वयं अपना परिचय दे देती है, गांधी के कहने से नहीं।

सिद्धि-साधन ।

* गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ,
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥८०॥

(भर्तृहरि)

गुणदायक को कार्य हो, अथवा अवगुण धाम ।
परारम्भ ते पूर्व ही, सोच लेहु परिणाम ॥
अबुध शीघ्रमय कुटिल फल, काम कियेका अन्त ।
कण्टक सों खटके हिये, दाहै मरण पर्य्यन्त ॥

---

* को वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नता ।

(मेघदूत)

कोई कार्य्य करने से पहिले उसका परिणाम सोचे बिना उद्योग करने वाले सफल मनोरथ तो होते ही नहीं, बल्कि उन्हें हार और तिरस्कार से लज्जित होना पड़ता है ।

अनुचित उचित काज कुछु होऊ ।
समुझि करय भल कह सब कोऊ ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं ।
कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं ॥ (तु० दा०)

* सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदांपदम् । वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥८१॥ (भारवी)

---

* यह किरातार्जुनीय काव्य के दूसरे सर्ग का तीसवां श्लोक है । कहते हैं कि, भारवी की स्त्री को एक वार धन की आवश्यकता प्रतीत हुई । उसने भारवी से धन की याचना की, परन्तु, विद्वानों के पास धन प्रायः कम ही होता है । भारवी जी उस समय किरातार्जुनीय लिख रहे थे । उपरोक्त श्लोक का एक पद ही तैयार था । वही पत्नी को दे दिया और कहा कि, इसको कहीं गिरवी रख कर अपनी ज़रूरत पूरी कर लो । भारवी की स्त्री ने यह श्लोकार्ध एक वैश्य की स्त्री के पास गिरवी रख दिया । वैश्य की स्त्री ने उसे अपने पलङ्ग के सामने दीवार से लटका लिया, वैश्य स्त्री का पति १५ वर्ष हुए, व्यापार के लिये किसी दूर देश को गया हुआ था । परन्तु उसके जाने से पूर्व वह गर्भवती हो चुकी थी । पश्चात् समय पर उसके पुत्र पैदा हुआ ।

"आतश" यही दुआ है खुदाए करीम से।
मोहताज ऐ करीम न कीजो बख़ील के॥

नीच लोगों का कृपापात्र बनने के बदले में अपने लिए यह अच्छा समझता हूं कि पुराने कपड़ों में नंगा रह कर दिन काटूं, और थोड़ी सी जीविका पर ही संतोष करूं।

(मुहम्मद-बिन-बशीर)

किं खलु रत्नैरेतैः किं पुनरभ्रायितेन वपुषा ते।
सलिलमपि यन्न तावक, मर्णववदनं प्रयाति तृषितानाम् ॥ १२७ ॥ (भामिनीविलास)

हे सागर! तेरे बहुमूल्य रत्नों और तेरे सुन्दर शरीर से क्या लाभ है, जब कि तेरा जल भी तृषातुर प्राणियों के मुंह में नहीं पड़ता है।

सेराब न हो जिस से कोई तिश्नए मक़सूद।
ऐ "ज़ौक़" जो वह आबेबक़ा भी है ते क्या है॥

वाइज़ न तुम पियो न किसी को पिला सको।
क्या बात है तुम्हारी शराबे तहूर की॥

(ग़ालिब)

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर॥ (कबीर)

याते मय्यचिरान्निदाघमिहिरज्वालाशतैः शुष्कतां । गन्ता कं प्रति पांथसंततिरसौ संतापमालाकुला ॥ एवं यस्य निरंतराधिपटलैर्नित्यं वपुः क्षीयते । धन्यं जीवनमस्य मार्गसरसो धिग्वारिधीनां जनुः ॥१२८॥

(भामिनी विलास)

ग्रीष्मकाल के सूर्य की परम प्रचंड ज्वाला से मेरे शीघ्र ही शुष्क हो जाने पर यह प्यासे मुसाफ़िर किस के पास जायेंगे। ऐसा कहने वाला रस्ते का तालाब, जिस का शरीर निरंतर आपत्तियों से क्षीण होता है, धन्य है, परन्तु अखंड जल परिपूर्ण समुद्र को धिक्कार है। तात्पर्य इस का यह है कि समुद्र उपकार करने में असमर्थ है। क्योंकि खारो होने के कारण उस का जल कोई नहीं पीता। अर्थात् धनवान हो कर भी जो मनुष्य उपकार नहीं करता उस को धिक्कार है और जो अल्प धन रखता हुआ भी परोपकार करता है उस का जीवन सफल है।

धन "रहीम" जल पंक को, लघु जिय मिटत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत् पियासो जाय ॥

———

विषमता ।

भवत्येकस्थले जन्म गन्धस्तेषां पृथक् पृथक् ।
उत्पलस्य मृणालस्य मत्स्यस्य कुमुदस्य च १२९

नील कमल, श्वेत कमल, कमल की दंडी, और मछली इन सब का जन्मस्थान एक ही है, परन्तु गंध अर्थात् बू जुदा जुदा होती है ।

उपजहि एक संग जल माहीं ।
जलज जोंक जिमि गुण विलगाहीं ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू ।
जनक एक जग जलधि अगाधू ॥
एक पिता के विपुल कुमारा ।
होहिं पृथक् गुन सील अचारा ॥
कोउ पंडित कोउ तापस ज्ञाता ।
कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥
(तुलसीदास)

एक उदर ते एक संग, उपजि न इकसे होय ।
जैसे कांटे बेर के, बांके सीधे दोय ॥
यदपि सहोदर होय तऊ, प्रकृति और की और ।
विष मारे ज्यावे सुधा, उपजे एक हि ठौर ॥
मारे इक रक्षा करे, एक ही कुल के होय ।
ज्यों कृपान और कवच, ये एक लोह सों दोय ॥

सब इक से होत न कहूं, होत सबन में फेर।
कपरी खादी बाफ़तो, लोह तवा समसेर॥ (वृन्द)

सफ़हये दहर पै यक दिल न हुआ एक से एक।
दिल के दो हर्फ़ हैं जुदा एक से एक॥ (ज़ौक़)

نه هر زن زن است و نه هر مرد مرد،
خدا پنج انگشت یکسان نه کرد –

न हर ज़न ज़न अस्तो, न हर मर्द मर्द।
ख़ुदा पंज अंगुश्त यकसां न कर्द॥

प्रत्येक स्त्री स्त्री, और प्रत्येक पुरुष पुरुष नहीं होता।
ईश्वर ने पांचों अंगुलियों को रचना समान नहीं की है॥

या सुन्दरी सा पतिना विहीना,
यस्यः पति सा महती करूपा।
यत्र द्वयं तत्र सुतस्य हानि-
र्यत्र त्रयं तत्र दरिद्रता च ॥१३०॥

निम्न लिखित सवैया इस का अक्षरशः अनुवाद है—

जा तिय का अति उत्तम रूप बनायहु ता तिय को पतिहीना।
जो मन भावन शैल दियो पुनि तौ तियही को कुरूपिनी कीना॥
जो बहुरूप दई दुहुं को पुनि तौ कलपावत पुत्र विहीना।
तीनहु जाहि दई शिव सम्पति जू विधि ताहि दरिद्र ही दीना॥

विधि-विडंबना।

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः। तदपि तत्क्षणभंगि करोति चेदहह कष्टमपंडितता विधेः ॥ १३१॥ (भर्तृहरि)

जहि पुरुषहि बिधिना रच्यो, सकल गुनन के खान।
तिन्है दीन्ह क्षणभंग तन, मरम परै नहि जान ॥

अनघड़ तेरी बातें कहां लों वखानो दई,
मानस में प्रीति दीन्ही प्रीति में बिछोहतो।
कूरन को धन दीनो सुघरन को सोच कीनो,
ऐसो नांह कीनो जाकों जैसो जहां सोहतो ॥
"ठाकुर" कहत जोपैं विधि में विवेक होतो,
सुर नर असुर पशु पक्षी को मोहतो।
रूपवंत मानस जोपें कसक वंत होतो,
होती सोनेमें सुगंध तो सराहवें को कोहतो॥

कहा कहौं विधि की अविधि भूल परे प्रवीन।
मूर्ख को सपति दई पंडित संपति हीन ॥ (वृन्द)

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य। विद्वान्धनाढ्यो न तु दीर्घजीवी धातुः पुराकोऽपि न बुद्धिदोऽभूत ॥१३२

(चाणक्य)

स्वर्ण में गंध गन्ने में फल और चन्दन वृक्ष के फूल नहीं लगाया, विद्वान पुरुष को दीर्घजीवी नहीं किया, विधाता को पहिले कोई बुद्धि देने वाला नहीं हुआ।

चन्दन में फूल और ईखन में न दीन्हे फल,
बड़े बड़े कंटक गुलाबन के डारे को।
कोयल सुबानी दै अमर कीनो कागन को,
छोटी छोटी अखियाँ बनाई गज भारे को॥
सोने में सुगंध नहिं हीरा विष मूल कीनो,
अग्नि सधूम गति थिर नहीं पारे की।
भाषैं "सीताराम" हेर हेर एक आनन तै,
कौन कौन चूक चतुरानन विचारे की॥
चन्द न कियो नकलंक काया ते अमर न कीनी।
लक्ष्मी लई दातार कृपन करमें दई दीनी दीनी॥
सोन न कियो सुगंध करी कस्तूरी कारी।
निष्फल नागर बेल बोत फल लग्गा ताडी॥

चकवा रेन बिछबो कियो सागर जल खारो कियो।
कवि "गद्द" कहेरे ठाकुरा तु ठौर ठौर भूली गयो॥
कटु इन्द्रायण में सुन्दर फल मधुर ईख में एक नहीं।
बुद्धिमान्द्य की सीमा तू ने दिखलाई है कहीं कहीं॥
निपट सुगन्ध हीन यदि तू ने पैदा किया पलाश।
तो क्या कंचन में भी तुझ को करना न था सुवास॥
विधे! मनोज्ञ-मात्र भाषा के, द्रोही पुरुष बनाना छोड़।
राम नाम सुमिरन कर वुड्ढे और काम से अब मुख मोड़॥
एकानन हम, चतुर नन तू, अत: कहें क्या और विशेष?।
बुद्धिमान जन को इतना ही बतलाता बस है भुवनेश॥

(महावीरप्रसाद द्विवेदी)

वेदान्तियों के विचार।

मृता मोहमयी माता जातो ज्ञानमयः सुतः।
सूतकं वर्तते नित्यं कथं सन्ध्यामुपास्महे॥१३३॥

एक मनुष्य ने किसी वेदान्ती से प्रश्न किया, कि तुम सन्ध्या उपासना क्यों नहीं करते, इस के उत्तर में उसने कहा—

मोह रूपी माता मरगई है, और ज्ञानरूपी पुत्र उत्पन्न हो चुका है, प्रतिदिन तो हमें सूतक घेरे रहता है, सन्ध्या किस प्रकार करें। अर्थात् जब तक मोहरूपी आवरण से मनुष्य

आच्छादित है, जब तक ज्ञान की ज्योति उस के हृदय में नहीं जगती, उसी समय तक वह सिन्ध्या आदि के फेरे में पड़ा रहता है। ज्ञान की ज्योति प्राप्त होने पर वह इन से परे हो जाता है।

کافر عشقم مسلمانی مرا درکار نیست ،
هر رگ من تارگشته حاجت زنار نیست - (خسرو)

काफ़रे इश्क़म मुमलमानी मरा दरकार नेस्त।
हर रगे मन तार गश्ता हाजते ज़ुन्नार नेस्त॥ (खुसरो)

मैं इश्क़ का काफिर हूं मुझे मुसलमानी की ज़रूरत नहीं है। मेरे शरीर को प्रत्येक रग धागा होचुकी है, इस लिए यज्ञोपवीत भी मुझे नहीं चाहिये॥

आशक़ों को इम्तियाज़े देरो काबा कुछ नहीं।
उसका नक़शेपा जहां देखा वहां सिर रख दिया॥ (रौनक़)

مذهب عشق از همه ملت جدا است ،
عاشقاں را مذهب و ملت خدا است -

मज़हबे इश्क़ अज़ हमा मिल्लत जुदास्त।
आशक़ां रा मज़हबो मिल्लत खुदास्त॥

प्रेम--धर्म सब मतों से पृथक है। प्रेमिजनों का धर्म और मत केवल परमात्मा ही है।

از مذهبم مپرس که مومن نه کافرم ،
من رسم این دیار نه دانم مسافرم -

अज़ मज़हबम मपुरस कि मोमिन न काफ़रम ।
मन रस्मे ईं दयार न दानम मुसाफ़रम ॥

मेरे मत की निस्बत मत पूछो क्योंकि मैं न तो मोमिन हूं और न काफ़र, मैं मुसाफिर हूं और यहां की रीतियों से सर्वथा अनभिज्ञ हूं।

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजन सकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥

(भर्तृहरि)

रह्यो मदान्ध विशेष मैं, जब लग अति अलपज्ञ ।
गर्व रह्यो चित मांह यह, मोमम को सरवज्ञ ॥
जब मैं पंडित जनन तें, प्राप्त कियो कुछ ज्ञान ।
जान पड़ी निज मूर्खता, ज्वरसम मद विलगान ॥
"भीखा" बात अगम्म की कहन सुनन में नाहि ।
जो जाने सो कहे ना कहे सो जाने नाहि ॥

हम जानते थे इल्म से कुछ जानेंगे ।
जाना तो यह जाना कि न जाना कुछ भी ॥ (ज़ौक़)

हमेशा कहता था हर बात पर नमेदानम ।
कुछ इस में शक नहीं "अकबर" बड़ा ही आलम था ॥

این مدعیان در طلبش بیخبرانند ،
کاں راکه خبر شد خبرش باز نیامد — (سعدی)

इं मुदैय्यां दर तलबश बेख़बरानंद ।
काँ रा कि ख़बर शुद ख़बरश बाज़ नियामद ॥ (सादी)

यह उस की तलब का दावा करने वाले सब बेख़बर हैं, क्योंकि जिस को उस की ख़बर हो जाती है, उस की कोई ख़बर ही नहीं आती।

The wisest amongst are those,
Who know that they know nothing.
(Carlyle)

हम में सब से अधिक ज्ञानवान वह हैं, जो यह जानते हैं, कि वह कुछ नही जानते। (कारलाइल)

जानामि धर्मं नचमे प्रवृत्तिर्जानामि पापं न च मे निवृत्तिः। केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथानियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥१३५॥

(पांडवगीता)

धर्म को जानता हूं, परन्तु मेरी उस की ओर प्रवृत्ति नहीं है, पाप को भी जानता हूं, परन्तु उससे निवृत्ति नहीं है,

कोई * देवता जो मेरे हृदय में बैठा हुआ है, जैसा वह कहता है, वैसा मैं करता हूं।

نقش مستوری و مستی نه بدست من و تست،
آنچه استاد ازل گفت بکن آن کردم - (حافظ)

नक़श मस्तूरीओ मस्ती न वदस्त मनो तुस्त।
आंचे उस्तादे अज़ल गुफ़्त बकुन आँकरदम ॥(हाफ़िज़)

पाकदामनी और रिंदी मेरे और तेरे वश में नहीं है, जो कुछ परमात्मा ने कहा मैंने वही किया।

फिरता हूं फेरता है वह वह पर्दानशीं जिधर।
पुतली की तरह मैं नहीं कुछ इख़्तियार में ॥

फ़ेल अपने का नहीं इन्सान कुछ मुख़तार कार।
अमर नेकोवद को क्या पुरसश है इस मजबूर से ॥
(ग़ाफ़िल)

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्व देवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥१३६॥
(पांडव गीता)

---

* ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ गीता १८-६१

हे अर्जुन! परमात्मा के नियत रूपी यन्त्र में स्थिर सर्व प्राणियों को अपनी प्रकृतिरूपी माया से भ्रमण करता हुआ, परमात्मा सब प्राणियों के हृदय में स्थिर है।

जिस प्रकार आकाश से गिरा हुआ जल समुद्र में चला जाता है, इसी प्रकार समस्त देवताओं को की गई नमस्कार परमात्मा को पौंहच जाती है।

एकै अल्लह राम है समरथ साईं सोइ।
मैदे के पकवान सब खाना होइ सो होइ॥
अलख इलाही एक तूं, तूं ही राम रहीम।
तूं ही मालिक मोहना, केसो नाउं करीम॥
अविगति अल्लह एक तूं; गनी गोसाईं एक।
अजब अनूपम आप हइ "दादू" नाउं अनेक॥

मिलते रस्तों के हैं सब हेर फेर।
सब जहज़ों का है लंगर एक घाट॥ (हाली)

शैख़ हो या हो बरहमन, मावूद सब का है वही।
एक है दोनों की मंज़िल फ़ेर हैं कुछ राह का॥
(अफ़सूं)

"ज़ौक़" इस्मे इलाही हैं सब इस्मे आज़म।
उसके हर नाम में इज़्ज़त है न इक नाम में ख़ास॥

हूं मैं परवाना वहां रौशन जहां पर भेद हो।
शमये वाहदत चाहिये कुरआन हो या वेद हो॥
(अकबर)

हम इश्क के बन्दे हैं मज़हब से नहीं वाक़िफ।
गर काबा हुआ तो क्या बुतख़ाना हुआ तो क्या॥ (जहांगीर)

شکم بند دستست و زنجیر پائے؛
شکم بندہ نادر پرستد خدائے - (سعدی)

शिकम बन्द दस्तस्त व ज़ंजीर पाए।
शिकम बन्दा नादर परस्तद खुदाए॥ (सादो)

पेट हाथ की बेड़ी और पाओं की ज़ंजीर है। पेट का दास शायद ही कभी ईश्वर की पूजा कर सकता है।

भूखे भजन न होय गुपाला। ले ले अपनी कंठी माला॥

जब पेट की ही पड़ रही फिर और की क्या बात है।
"होती नहीं है भक्ति भूखे" उक्ति यह विख्यात है॥
इस पेट पापी के लिये ही हम विधर्मी बन रहे।
निज धर्म-मानस से निकल अघ-पंक में है सन रहे॥
करता नहीं क्या पाप भूखा? पेट! हो तेरा बुरा।
छोड़ती सुत तक नहीं उरगी क्षुधा से आतुरा॥
(मैथिलीशरण गुप्त)

भूख विधाता ने रची सब का हरे गुमान।
क्षुधा निवारण के अरथ क्या नहिं करे पुमान॥
क्या नहिं करे पुमान विहित अवहित ना देखे।
खाऊं खाऊं करे भक्ष्याभक्ष्य न पेखे॥
कहि "गिरधर" कविराय न ऐसा जग में दूख।
त्रयलोकी में जैसी यह व्यापी है भूख॥

जिस प्रकार आकाश से गिरा हुआ जल समुद्र में चला जाता है, इसी प्रकार समस्त देवताओं को की गई नमस्कार परमात्मा को पौंहच जाती है।

एकै अल्लह राम है समरथ साईं सोइ।
मैदे के पकवान सब खाना होइ सो होइ॥
अलख इलाही एक तूं, तूं ही राम रहीम।
तूं ही मालिक मोहना, केसो नाउं करीम॥
अविगति अल्लह एक तूं, गनी गोसाईं एक।
अजब अनूपम आप हइ "दादू" नाउं अनेक॥

मिल्लतें रस्तों के हैं सब हेर फेर।
सब जहज़ों का है लंगर एक घाट॥ (हाली)

शैख़ हो या हो बरहमन, माबूद सब का है वही।
एक है दोनों की मंज़ल फेर हैं कुछ राह का॥
(अफ़सूं)

"ज़ौक़" इस्मे इलाही हैं सब इस्मे आज़म।
उसके हर नाम में इज्ज़त है न इक नाम में ख़ास॥

हूं मैं परवाना वहां रौशन जहां पर भेद हो।
शमये वाहदत चाहिये कुरआन हो या वेद हो॥
(अकबर)

हम इश्क के बन्दे हैं मज़हब से नहीं वाक़िफ़।
गर काबा हुआ तो क्या बुतख़ाना हुआ तो क्या॥ (जहांगीर)

———

شکم بند دستست و زنجیر پائے
شکم بندہ نادر پرستد خدائے - (سعدی)

शिकम बन्द दस्तस्त व ज़ंजीर पाए।
शिकम बन्दा नादर परस्तद खुदाए॥ (सादी)

पेट हाथ की बेड़ी और पाओं की ज़ंजीर है। पेट का दास शायद ही कभी ईश्वर की पूजा कर सकता है।

भूखे भजन न होय गुपाला। ले ले अपनी कंठी माला॥

जब पेट की ही पड़ रही फिर और की क्या बात है।
"होती नहीं है भक्ति भूखे" उक्ति यह विख्यात है॥
इस पेट पापी के लिये ही हम विधर्मी बन रहे।
निज धर्म-मानस से निकल अघ-पंक में है सन रहे॥
करता नहीं क्या पाप भूखा? पेट! हो तेरा बुरा।
छोड़ती सुत तक नहीं उरगी क्षुधा से आतुरा॥
(मैथिलीशरण गुप्त)

भूख विधाता ने रची सब का हरे गुमान।
क्षुधा निवारण के अरथ क्या नहि करे पुमान॥
क्या नहि करे पुमान विहित अवहित ना देखे।
खाऊं खाऊं करे भक्ष्याभक्ष्य न पेखे॥
कहि "गिरधर" कविराय न ऐसा जग में दूख।
अवलोको में जैसी यह व्यापी है भूख॥

باگر سنگی قوت پرهیز نماند ،
افلاس عنان از کف تقوی بستاند – (سعدی)

वा गुरसनगी कुव्वते परहेज़ नमानद ।
इफ़लास अनान अज़ कफ़े तक़्वा विस्तानद ॥ (सादी)

भूख के कारण परहेज़ की शक्ति नहीं रहाती है, भूखा मनुष्य परहेज़गारी की बाग हाथ से छोड़ देता है अर्थात् परहेज़गारी त्याग देता है ॥

दृढ़ प्रतिज्ञ ।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१३८

(भर्तृहरि)

नीति निपुण निन्दा करैं, अथवा करैं बखान ।
गृह आवैं बहु लक्ष्मी, चाहे करैं पयान ॥
प्राण जाय तत्कालहीं, चहै युगान्तर माँहि ।
धीर लोग तजि न्याय पथ, मगनहिं वाहर जाहिं ॥

नीच करैं भय विघ्न तैं, परारम्भ नहिं काज।
मध्यम जन आरम्भ करि, करै विघ्न भय त्याज॥
उत्तमजन कहुं विघ्न हूं, हो यदि बारम्बार।
तजै नहिं आरम्भ करि, बिना पुराये कार॥

रौशन दिलों को बाद हवादस से क्या गुज़िद।
सरसर से गुल हुआ न चिराग़ आफ़ताब का॥

(अमानत)

The wise and prudent conquer difficulties,
By daring to attampt them, Sloth and folly,
Shiver and shrink at sight to tail and danger,
And make the impossibility they fear,

(Row)

विवेकी और दुरदर्शी मनुष्य कठिन कार्यों को भी करने के साहस से जीत लेते हैं। परन्तु आलसता और मूर्खता यह दोनों परिश्रम और भय को देख कर कांपने और संकुचित होने लगती हैं और ऐसा होने से जो मनुष्य असाध्य कार्यों से डर जाता है। वह स्वयं ही असाध्यता पैदा करता है।

مشکلے نیست کہ آساں نشود ،
مرد بائید کہ ہراساں نشود - (سعدی)

باگر سنگی قوت پرهیز نماند ،
افلاس عناں از کف تقوی بستاند - (سعدی)

वा गुरसनगी कुव्वते परहेज़ नमानद ।
इफ़लास अनान अज़ कफ़े तक़्वा बिस्तानद ॥ (सादी)

भूख के कारण परहेज़ की शक्ति नहीं रहाती है, भूखा मनुष्य परहेज़गारी की बाग हाथ से छोड़ देता है अर्थात् परहेज़गारी त्याग देता है ॥

दृढ़ प्रतिज्ञ ।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१२८

(भर्तृहरि)

नीति निपुण निन्दा करैं, अथवा करैं बखान ।
गृह आवैं बहु लक्ष्मी, चाहे करैं पयान ॥
प्राण जाय तत्कालहीं, चहै युगान्तर माँहि ।
धीर लोग तजि न्याय पथ, मगनहिं बाहर जाहिं ॥

नीच करैं भय विघ्न तें, परारम्भ नहिं काज।
मध्यम जन आरम्भ कर, करैं विघ्न भय त्याज॥
उत्तमजन कहं विघ्न हूं, हो यदि बारम्बार।
तजैं नहिं आरम्भ करि, बिना पुराये कार॥

रौशन दिलों को बाद हवादस से क्या गुज़िंद।
सरसर से गुल हुआ न चिराग़ आफ़ताब का॥
(अमानत)

The wise and prudent conquer difficulties,
By daring to attampt them, Sloth and folly,
Shiver and shrink at sight to tail and danger,
And make the impossibility they fear,
(Row)

विवेकी और दुरदर्शी मनुष्य कठिन कार्यों को भी करने के साहस से जीत लेते हैं। परन्तु आलसता और मूर्खता यह दोनों परिश्रम और भय को देख कर कांपने और संकुचित होने लगती हैं और ऐसा होने से जो मनुष्य असाध्य कार्यों से डर जाता है। वह स्वयं ही असाध्यता पैदा करता है।

مشکلے نیست کہ آساں نشود ،
مرد بائید کہ ہراساں نشود – (سعدی)

मुश्कले नेस्त कि आसाँ नशवद ।
मर्द बायद कि हरासाँ नशवद ॥ (सादी)

ऐसी कोई कठिनता नहीं है जो आसान न हो जाय, मनुष्य को चाहिये कि घबरावे नहीं ।

नेकी के रास्ते में सौ आफ़तें हों सिर पर ।
ख़ंजर बकफ़ हो क़िसमत गरदूं हो मायले शर ॥
रंजो अलम के बादल आए हुए हों घिर कर ।
होने हो क़ियामत बरपा हो शोरे महशर ॥
हां ऐ जवां बढ़े जा आगे क़दम धरे जा ।
जब तक कि दम में दम है नेकी का दम भरे जा ॥
तारीक शब हो उस पर काली घटा हो मायल ।
पीछे हो ख़ंदक़ आगे आतिशकदा हो हायल ॥
राहें कठिन, कड़ी हो एक एक गरचे मंज़ल ॥
लेकिन नहीं मुनासिब इन्सां को छोड़ना दिल ॥
हां ऐ जवां बढ़े जा आगे क़दम धरे जा ।
जब तक कि दम में दम है नेकी का दम भरे जा ॥
(फ़लक)

हंसा बक एक रंग लखिय चरैं एक ही ताल ।
क्षीर नीर ते जानिये बक उघरैं तेहि काल ॥
हंसा बगुला एक सा मान सरोवर माहिं ।
बगा ढंढोरे माछरी हंसा मोती खाहिं ॥
(कबीर)

*गुणवन्तः क्लिश्यन्ते प्रायेण भवन्ति निर्गुणाः सुखिनः । बन्धनमायान्ति शुका यथेष्टसंचारिणः काकाः ॥१४२॥

गुणी जन प्रायः क्लेश पाते हैं, और गुण हीन पुरुष सुखी रहते हैं । जैसा कि तोते बन्धन में रह कर दुःख पाते हैं, और कौवे इच्छानुसार आज़ाद विचरते हैं ॥

कहूं कहूं गुण ते अधिक उपजत दोष शरीर ।
मधुरी बाना बोल के परत पींजरा कीर ॥ (वृन्द)

---

* इस कलि काल में भद्र पुरुषों को दुःख क्यों होता है, एक कवि इसका विलक्षण ही कारण बताते हैं :—

लोको मद्युगजन्मा, कृतकृत कर्मा, न सद्धर्मा ।
इति हेतोरिव कलिना बलीना संपीड्यते साधुः ॥

साधु पुरुष पैदा तो हुये हैं, हमारे ज़माने में और काम करते हैं, सत्युग का इस लिये क्रोधित हो कर महा बलवान कलिकाल साधु सज्जनों को दुःख दे रहा है ।

मुश्किले नेस्त कि आसाँ नशवद ।
मर्द बायद कि हरासाँ नशवद ॥ (सादी)

ऐसी कोई कठिनता नहीं है जो आसान न हो जाए, मनुष्य को चाहिये कि घबरावे नहीं।

नेकी के रास्ते में सौ आफ़तें हों सिर पर।
ख़ंजर बकफ़ हो क़िसमत गरदूं हो मायले शर॥
रंजो अलम के बादल आए हुए हों घिर कर।
होने हो क़ियामत बरपा हो शोरे महशर॥
हां ऐ जवां बढ़े जा आगे क़दम धरे जा।
जब तक कि दम में दम है नेकी का दम भरे जा॥
तारीक शब हो उस पर काली घटा हो मायल।
पीछे हो ख़ंदक़ आगे आतिशकदा हो हायल॥
राहें कठिन, कड़ी हो एक एक गरचे मंज़ल॥
लेकिन नहीं मुनासिब इन्सां को छोड़ना दिल॥
हां ऐ जवां बढ़े जा आगे क़दम धरे जा।
जब तक कि दम में दम है नेकी का दम भरे जा॥
(फ़लक)

हंसा बक एक रंग लखिय चरें एक ही ताल ।
क्षीर नीर ते जानिये बक उघरे तेहि काल ॥
हंसा बगुला एक सा मान सरोवर माहिं ।
बगा ढंढोरे माछरी हंसा मोती खाहिं ॥
(कबीर)

*गुणवन्तः क्लिश्यन्ते प्रायेण भवन्ति निर्गुणाः सुखिनः । बन्धनमायान्ति शुका यथेष्टसंचारिणः काकाः ॥१४२॥

गुणी जन प्रायः क्लेश पाते हैं, और गुण हीन पुरुष सुखी रहते हैं। जैसा कि तोते बन्धन में रह कर दुःख पाते हैं, और कौवे इच्छानुसार आज़ाद विचरते हैं ॥

बहु कहुं गुण ते अधिक उपजत दोष शरीर ।
मधुरी बाना बोल के परत पींजरा कीर ॥ (वृन्द)

---

* इस कलि काल में भद्र पुरुषों को दुःख क्यों होता है, एक कवि इसका विलक्षण ही कारण बताते हैं :—

लोको मद्युगजन्मा, कृतकृत कर्मा,-न सद्धर्मा ।
इति हेनोरिव कलिना बलीना संपीड्यते साधुः ॥

साधु पुरुष पैदा तो हुये हैं, हमारे ज़माने में और काम करते हैं, सत्युग का इस लिये क्रोधित हो कर महा बलवान कलिकाल साधु सज्जनों को दुःख दे रहा है।

धन प्रशंसा

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः ।
स पण्डितः सश्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः ।
सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ १४३ ॥

(भर्तृहरि)

सोइ कुलीन सोइ गुनी, वक्ता दरशन योग ।
जो नर या संसार में, करे लक्ष्मी भोग ॥
याते यह सिधि होत है, दर्व सर्व शृङ्गार ।
कंचन कै आश्रय सबै, कंचन ही सुख सार ॥
दामहीसों आठों याम बुद्धि को प्रकाश होत,
दामहीसों सबै ठौर होत बड़ो नाम है ।
दामहीसो भैया बन्धु आय सब रुजो होत,
दामहीसों बनहूमें होत सब काम है ॥
दामहीसों सभामांही आदर को पावत हैं,
दामहीसों घरमांही होत बिसराम है ।
कहे कवि "हेम" यह नीके कै विचारि देख्यो,
मेरे भाय बीसों बिस्वा दामहीमें राम है ॥

اے زر تو خدا نہ ولیکن بخدا ،
ستار عیوب و قاضی الحاجاتی ۔

अच्छे कुल वाले भी धन के अभाव से नीच, समझे जाते हैं। परन्तु अकुलीनों के पास यदि कौड़ियां अर्थात् धन है तो वह कुलीन हैं॥

पूरे बेवकूफ़ कूरे विषयी बुरे हैं तौउ,
पैसा जापैं पास तो परेस्ता खुदा के हैं।
पैसे बिन विज्ञ ही विख्यात बेसहूर जैसे,
सालिग सवारथि न वैसे पास आके हैं॥
पतनी पती की नांही पती नांही पतनी के,
पिता नांही पूतन के, पूत न पिताके हैं।
मफम मफाके फिरै घर मां झफाके परै,
पैसा नहिं जाके ऐसे काके फिर काके हैं॥
(शालिगराम)

कौड़ी बग़ैर सोते थे ख़ाली ज़मीन पर।
कौड़ी हुई तो रहने लगे शाहनशीन पर॥
पटके सुनैहरी बन्ध गये जामों की चीन पर।
मोती के लच्छे लगा गये घोड़ों की ज़ीन पर॥
कौड़ी के सब जहान में नक़शो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो, एक के फिर तीन तीन हैं॥
(नज़ीर)

Money makes the mare go,
Wheather it has legs or not,

रुपैया घोडी को चला देता है, ख़्वाह उसकी टांगें हों या न हों॥

धन प्रशंसा

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः ।
स पण्डितः सश्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः ।
सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ १४३ ॥

(भर्तृहरि)

सोइ कुलीन सोइ गुणी, वक्ता दरशन योग ।
जो नर या संसार में, करे लक्ष्मी भोग ॥
याते यह सिद्धि होत है, दर्व सर्व शृङ्गार ।
कंचन कै आश्रय सबै, कंचन ही सुख सार ॥

दामहीसों आठों याम बुद्धि को प्रकाश होत,
दामहीसों सबै ठौर होत बड़ो नाम है ।
दामहीसो भैया बन्धु आय सब रुजो होत,
दामहीसों बनहूमें होत सब काम है ॥
दामहीसों सभामांही आदर को पावत है,
दामहीसों घरमांही होत बिसराम है ।
कहे कवि "हेम" यह नीके कै विचारि देख्यो,
मेरे भाय बीसों बिस्वा दामहीमें राम है ॥

اے زر تو خدا نہ ولیکن بخدا ،
ستّار عیوب و قاضی الحا جاتی ـ

अच्छे कुल वाले भी धन के अभाव से नीच, समझे जाते हैं। परन्तु अकुलीनों के पास यदि कौड़ियां अर्थात् धन है तो वह कुलीन हैं ॥

पूरे बेवकूफ़ क्रूरे विषयी बुरे हैं तौउ,
पैसा जापैं पास तो परेस्ता खुदा के हैं।
पैसे बिन विज्ञ ही विख्यात बेसहूर जैसे,
सालिग मवारथि न वैसे पास आके हैं ॥
पतनी पती की नांही पती नांही पतनी के,
पिता नांही पूतन के, पूत न पिताके हैं।
मफम मफाके फिरैं घर मां झफाके परै,
पैसा नहिं जाके ऐसे काके फिर काके हैं ॥
(शालिगराम)

कौड़ी वग़ैर सोते थे ख़ाली ज़मीन पर।
कौड़ी हुई तो रहने लगे शाहनशीन पर ॥
पट्के सुनैहरी बन्ध गये जामों की चीन पर।
मोती के लच्छे लगा गये घोड़ों की ज़ीन पर ॥
कौड़ी के सब जहान में नक़शो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो एक के फिर तीन तीन हैं ॥
(नज़ीर)

Money makes the mare go,
Wheather it has legs or not,

रुपैया घोडी को चला देता हैं, ख़्वाह उसकी टांगें हों या न हों ॥

इन रोज़ों ख़ानदान को कोई पूछता नहीं।
इज़्ज़त है आदमीकी बस अब सीमो ज़रके साथ॥ (दलेर)

टका धर्मस्टका कर्मस्टकाहि परमं पदम्।
यस्य गृहे टका नास्ति हा टका टकटकायते १४६

धर्म, कर्म, और परमपद भी टका ही है। जिस घर में टका नहीं होता वहां टकटकात ही रहता है।

टकाकरै कुलहूत टका मिरदङ्ग बजावै।
टका चढ़े सुखपाल टका सिर छत्र धरावै॥
टका माइ अरु बाप टका भाइन के भैया।
टका सासु और ससुर टका सिर लाड़लड़ैया॥
त्यों एक टका बिन टुकटुका होत रहत है रात दिन।
"बैताल" कहे विक्रम सुनो, धिक जीवन इक टका बिन॥

रौनक़ बहार होती है पैसे से सब हसूल।
और जो न होवे चेहरे पै उड़ती है ख़ाक धूल॥
पैसा ही सारी चीज है पैसा ही मर्द सूल।
बिन पैसे आदमी है जहां बीच ना क़बूल॥
पैसा ही रंगरूप है पैसा ही माल है।
पैसा न हो तो आदमी चर्खे की माल है॥ (नज़ीर)

***सुवर्णं वहु यस्यास्ति तस्य न स्यात्कथं मदः।**
नामसाम्यादहो यस्य धुस्तूरोपि मदप्रदः १४७

जिसके पास वहुत सुवर्ण है, उसे मद क्यों न हो जिस सुवर्ण के नाम सादृश्य से धतूरे में भी मादकता आजाती है। वह स्वयं मादक न क्यों न होगा।

कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय।
उहि खाये बौराय जग इहि पाये बौराय॥ (विहारी)

(कनक) धतूरे से (कनक) सोने में सौगुणा नशा अधिक है। क्योंकि धतूरे के तो खाने से आदमी पागल होता है। परन्तु सुवर्ण के पाते ही जग पागल हो जाता है।

नहिं कोउ अस जन्मा जग माहिं।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥ (तुलसीदास)

بادہ خوردن و ہوشیار نشستن سہل ست ،
گر بدولت برسی مست نگردی مردی -

---

* धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः।
प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः॥

बड़े ही महात्मा हैं जो धनाढ्य हो कर भी उन्मत्त नहीं होते, युवा होकर चञ्चल नहीं होते, और अधिकार पाकर घमंड से चूर नहीं हो जाते।

बादा खुर्दनो हुशयार निशस्तन सहलस्त।
गर बदौलत बिरसी मस्त नगर्दी मर्दी ॥

मद्यपान करके बुद्धि ठिकाने रहे यह आसान बात है। परन्तु दौलत (धन) प्राप्त करके यदि तू मस्त न हो बुद्धि को स्थिर रक्खे तो मर्द आदमी है।

धन निन्दा।

आपद्गतं हससि किं द्रविणांध मूढ !
लक्ष्मीः स्थिरा न भवतीति किमत्र चित्रम्।
एतान् प्रपश्यसि घटान् जलयन्त्रचक्रे,
रिक्ता भवन्ति भरिता भरिताश्च रिक्ताः १४८

हे धनान्ध ! हे मूढ़ ! विपत्ति से ग्रस्त पुरुष को देखकर तू क्यों हंसता है ? लक्ष्मी सदा स्थिर रहने वाली वस्तु नहीं है। रहट के घटों अर्थात् डिडों को देखो कि, खाली भरी जाती हैं और भरी हुई खाली हो रही हैं।

घटति बढ़ति संपति सुमति, गति अरहट की जोय।
रीति घटिका भरति है, भरी सु रीति होय ॥ (वृन्द)

गुर्रए औजे बिनाए आलमे इमकाँ न हो।
इस बुलन्दी के नसीबों मे है पस्ती एक दिन ॥ (ग़ालिब)

फ़हमीद वाले करते हैं दौलत पै कब घमंड।
क्या एतबार ज़िंदगिये मुस्तआर का॥ (तसर्ली

बाद मुर्दन जुज़ कफ़न क्या ख़ाक ले जाओगे साथ।
मुनइमो तुम को अबस है मालो दौलत पर घमंड॥(ज़

काम क़ारूं के न आया मालो ज़र।
मुनइमो ! बेजा है दौलत पर घमंड॥ (अंजम)

राजतः सलिलादग्नेश्चोरतः स्वजनादपि।
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव १४

धनवान् पुरुषों को राजा से, जल से, चोर और स्वज अर्थात् अपनों से भय लगा रहता है। जैसे प्रणियों को मृत्‍ का भय बना रहता है।

बहुत द्रव्य संचै जहां चोर राज भय हो।
कांसे ऊपर बीजुरी परति कहै सब कोय॥ (वृन्द)

साहन को तो भय घना, सहजो निर्भय रंक।
कुंजर के पग बेड़ियां चींटी फिरै निसंक॥ (-

है ज़हर हक़ में तेरे दौलत का यह ज़ख़ीरा।
ज़रदार ही तो अकसर मरता है खाके हीरा॥

अज़ीयत का सबब है पास जिन्से बे बहा रखना।
बराए लाल टुकड़े करते हैं काने बदख़शां को॥ (ग़ा०)

होती है जमा ज़र से परेशानी आख़िरश।
दिरहम की शकल सूरते दरहम से कम नहीं॥ (ज़ौक़)

लाख मुनइम जमा करे मालो ज़र लेकिन रफ़ीअ ।
फ़िकरो ज़ैहमतके सिवा कुछ हासिले दौलत नहीं॥(रफ़ी०)
जो माल के दोस्त हैं कोई उनसे यह कह दे ।
आफ़त हुई क़ारु के लिए ज़र की मुहब्बत ॥ (असीर)
तैहसील किया तो है तहफ़्फ़ुज़ का ख़याल ।
मैहफ़ूज़ रहा तो सरफ़ का है जंजाल ॥
आने में भी रंज और जाने में भी रंज ।
लानत तुझ पर हज़ार लानत ऐ माल ॥ [महर]

"हाली" ने धन के गुण दोष बतलाते हुए कहा है:—
दौलत ख़िरमन भी बरक़े ख़िरमन भी है ।
यह तोर को माल भी है जोशन भी है ॥
थोड़ा सा है इसमें शर तो है ख़ैर बहुत ।
गर सांप है यह तो सांप का मन भी है ॥ [हाली]

दान-महात्म ।

ानं भोगो नाशास्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
ो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥
(भर्तृहरि)

धन की याही तीन गति, दान भोग अरु नास ।
नास्यो धन जिन ना दियो, कियो न भोग विलास ॥

———

खाय न खर्चे सूमधन, चोर सबै ले जाय।
पीछे ज्यों मधुमच्छिका, हाथ मले पछिताय ॥ (वृन्द)

खाया जाय तो खायरे दिया जाय सो देह।
इन दोनों से जो बचै सो तुम जानो खेह ॥
सो तुम जानो खेह किसे पुन काम न आवे।
सर्व सोकको बीज पुनः पुनि तुझे रुआवै ॥
कह "गिरिधर" कविराय चरण त्रैधनके गायो।
दान भोग बिन नाश होत जो दियो न खायो ॥

तौफ़ीक़ अताकरे अगर तुझ को ख़ुदा।
औरों को खिला बैठके और ख़ुद भी खा ॥
चलती फिरती है छाओं दौलत ऐ "महर"।
जब तक है पास इस से कुछ नफ़ा कमा ॥

जो जल बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यहि सज्जन को काम ॥
हाड़ बड़ा हरि भजन कर द्रब्य बड़ा कुछ देह।
अकल बड़ी उपकार कर जीवन का फल येह ॥ (कबीर)
तब लग है जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै ॥ (रहीम)
"दादू" दीया है भला दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइये जो कर दिया न हो ॥

न ऐशे कैखुसरवी रहेगा न सौलते बहमनी रहेगी।
रहेगीऐ मुनइमो! तो बाक़ी दिये कीकुछ रौशनी रहेगी (हा०)

از زرو سیم راحتے برسان ،
خویشتن هم تمتعی برگیر -
ذکوۃ مال بدرکن که فضلهٔ رزرا ،
چو باغبان بزند بیشتر دهد انگور - (سعدی)

अज़ज़रो सीम राहते विरसान।
ख़्वेश्तन हम तमतई बरगीर॥
ज़काते माल बदर कुन कि फ़ज़लए रज़ रा।
चू बागबान बिज़नद बेशतर दहद अंगूर॥ (सादी)

अपने सोने चांदी से दूसरों को सुख पहुंचाओ और स्वयं भी आनन्द भोगो। अपने माल से ग़रीबों के लिए कर दो अर्थात दान करो क्योंकि माली जब अंगूर के पेड़ को काटता है तो वह अधिक फल देता है।

माल रखने को नहीं कहदो ग़नी से बांट दे।
लफ़ज़ में तक़सीम के दाखि़ल किया है सीम को॥

दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वर धनम्।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधम्१५१

हे कुन्ती पुत्र। निर्धन जनों की पालना करो समर्थ जनों को धन मत दो, रोगी को ही औषधी लाभदायक है निरोग मनुष्य को औषधी देने का क्या प्रयोजन है।

देना नहीं यह लेना है देना अमीर को।
देता है वह जो देता है बेकस फ़क़ीर को॥

दान दीन को दीजिये हरे दरिद्र की पीर।
औषधि ता को दीजिये जाके रोग शरीर॥ (वृन्द)

तुझे अमारत की गर तलब है लुटादे दौलत को बेकसों में।
मसाले दरया, जो पाये दे दे, मिलेगा, मत इन्तज़ार करदे॥
[प्रेम]

विद्या गुण वर्णन।

विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो
धेनु कामदुघा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च सा।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणं,
तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्व विषयं विद्याधिकारं कुरु॥

विद्या ही मनुष्य के यश को फैलाती है, भाग्य के क्षय होने अर्थात ऐश्वर्य नष्ट हो जाने पर विद्या ही आश्रय देती है, विद्या काम धेनु है अर्थात कामनाओं को पूर्ण करने वाली धेनु है, बन्धु स्त्री आदि के वियोग में प्रसन्न करने वाली है, विद्या ही तीसरी आंख है, विद्या ही सन्मान का घर है, विद्या ही से कुलकी महिमा बढ़ती है, और विद्या ही बिना रत्नों के आभूषण है, अतएव सब विषयों की अपेक्षा विद्या में अधिकार सम्पादन करो अर्थात सब कामों को छोड़ कर विद्या के पढ़ने पढ़ाने में यत्न करना उचित है॥

सब से प्रथम कर्तव्य है शिक्षा बढ़ाना देश में,
शिक्षा विना ही पड़ रहे हैं, आज हम सब क्लेश में।
शिक्षा विना कोई कभी बनता नहीं सत्पात्र है,
शिक्षा विना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है।
विद्या मधुर सहकार करती सर्वथा कटु निम्ब को,
विद्या ग्रहण करती कलोंसे शब्द को,प्रतिविम्ब को।
विद्या जड़ों में सहज ही डालती चैतन्य है,
हीरा बनाती कोयले को, धन्य विद्या धन्य है।

(मैथिलीशरण गुप्त)

"Ignorance is the curse of God;
Knowledg the wing with which we fly to heaven."

(Shakespear).

अज्ञान ईश्वर का दिया हुआ शाप है और ज्ञान उसकी कृपा। ज्ञान पंखों के समान है उसके द्वारा हम स्वर्ग को उड़ सकते हैं। (शेक्सपियर)

तालीम है मक़ामे तरक्क़ी का रास्ता।
तालीम ही बताती है तौसैफ़े किबरिया॥
तालीम ही से होते हैं अक़्दे तमाम वा।
तालीम मुश्ते ख़ाक को करती है कीमिया॥
तालीम ही का हज़रते इन्साँ को नाज़ है।
तालीम ही से हर किहो मह सरफ़राज़ है॥

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना ।
न गुह्यगोपेन शक्तं न च दंश निवारणे ॥

विद्या के बिना मनुष्य का जीवन कुत्ते की पूंछ के समान व्यर्थ है, क्योंकि वह न तो गोपनीय अंग को छिपा सकती है, और न मच्छरों को ही उड़ाने में समर्थ है ॥

रहेगा इल्म की दौलत से जो मैहरूम दुनियां में।
नहीं इन्सान वह हमरुत्बा कहिये उसकी हैवां का ॥
(दूला)

پئے علم چوں شمع باید گداخت ،
کہ بے علم نتواں خدا را شناخت - (سعدی)

पै इल्म चूं शमा बायद गदाख़त।
कि बेइल्म नतवाँ खुदा रा शनाख़्त ॥ (सादी)

विद्या प्राप्ति के लिये अपने आपको दीपक की तरह जला देना चाहिये क्योंकि अज्ञानी मनुष्य परमात्मा को नहीं जान सकता।

सुखदाई ऐक्य ।

अल्पानामपि वस्तुनां संहतिः कार्य साधिका।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदान्तिनः ॥१५३॥

छोटी छोटी वस्तुओं की एकता भी कार्य की साधिका होती है जैसे कि बहुत से तृणों को अकट्ठा करके जब रस्सी

बनाई जाती है तो उस से मस्त हाथी भी बांधे जा सकते हैं ॥

बांधे जात वारिधि हिमालय को हिलायो जात,
अग्नि जल वायु नित्त हुकुम उठाते हैं ।
ऐरावत नाचैं निज पीठ पै चढ़ावें शेर,
महा बलकारी ख़ौफ़नाक ख़ौफ खाते हैं ।
सम्भव होजात जिसे भाषै असम्भव जग,
सकल पदार्थ बिन मांगे घर आते हैं ।
"राम" कवि देखा है विचार कर बार बार,
एक एकता से सब काम बन जाते हैं ॥

एक कवि ने मनुष्यों को एकता की अवश्यकता मृदंग का दृष्टांत देकर क्या ही उत्तम ढंग से दरशाई है सुनिये:—

चेतन होयँ न एक सुर कैसे बने बनाइ ।
जड़ मृदंग बेसुर भये मुहैं थपेरे खाइ ॥

دو دل یک شود بشکند کوہ را ۔
پراگندگی آرد انبوہ را ۔

दोदिल यकशवद विशकुनद कोहरा ।
परागंदगी आरद अंबोह रा ॥

दो दिल एक हो जायें तो पहाड़ को तोड़ दें । और लश्कर को तितर बितर करदें ॥

कुव्वतो अमनो खुशी हैं समराहाए इत्तफ़ाक़ ।
समराए नाइत्तफ़ाक़ी जुज़ हज़ीमत कुछ नहीं ॥
यह इत्तफ़ाक़ फ़तहो ज़फ़र की क़ीद है ।
जिस जा है इत्तफ़ाक़ वहां रोज़ ईद है ॥

तासीर सहर की है तो बस इस अमल में है।
ताक़त है इत्तफ़ाक़ में ज़र्बुलमसल में है॥
क़तरों के इत्तफ़ाक़ से दरया का है वजूद।
ज़र्रों के इजतमाअ से सहरा की है नमूद॥
कुछ असल भी है सूत के बारीक तार की।
रस्सी अगर बनाइये लेकर हज़ार की॥
अल्ला रे इत्तफ़ाक़ तेरे हौसले बड़े।
हाथी के बन्द बन्द जकड़ लें खड़े खड़े॥
कुछ भी नहीं कहीं जो दिलों में नफ़ाक़ है।
सब कुछ है एक आन में गर इत्तफ़ाक़ है॥ (महर)

दुःखदाई फूट।

यत्रात्मीयो जनो नास्ति भेदस्तत्र न विद्यते।
कुठारे दण्डनिर्मुक्ते भिद्यन्ते तरवः कथम् १५४

जहां आत्मीयन (अपना जाति बांधव) नहीं है वहां अपना भेद नहीं खुलता है, जैसे कि कुल्हाड़ी से दण्ड निकाल दिया जाए तो वृक्ष कैसे कट सकते हैं अर्थात् आपस की फूट ही हानि का कारण है॥

अरि के साथ कुटुम्ब लखि जिय उपजत है त्रास।
जैसा लागै कुठार को तब बन राई विनाश॥ (वृन्द)
तहां नहीं कुछ भय जहां अपनो जाति न पास।
काठ बिना न कुठार कहुं तरू का करत विनास॥

जहां सुमति तहां संपति नाना ।
जहां कुमति तहां विपत निदाना ॥ (तुलसीदास)

जगत में घर की फूट बुरी ।
घर की फूटहि सों बिनशाई सुवरण लंक पुरी ।
फूटहि सों सब कौरव नाशे भारत युद्ध भयो ॥
जाको घाटो या भारत में अबलों नाहि पुज्यो ।
फूटहि सों जयचन्द बुलायो यवनन भारत धाम ॥
जा के फल अबलों भोगत सब आरज होय गुलाम ।
फूट हि सो नवनन्द विनाशे गयोमगधको राज ॥
चन्द्र गुप्त को नाशन चाह्यो आप नशे सहसाज ।
जो जग में धन मान और बल आपन राखन होय ।
तो अपने घर में भूलेहू फूट करो जनि कोय ॥

फूट गये हीरा की विकानी कनी हाट हाट,
काहू घाट मोल काहू बाढ़ मोल को लियो ।
टूट गई लंका फूट मिली है विभीषण को,
रावण समेत बस आसमान को गयो ।
कहैं कवि "गंग" दुरयोधन से छत्र धारी,
तनक में फूट ते गुमान वाको नै गयो ।
फूटे ते नरद उठ जात बाज़ी चौसर की,
आपस के फूटे कहो कौन को भलो भयो ॥

कुटुम्ब वालों के साथ विरोध करने की हानियां गिरिधर कवि की ज़बानी सुनने योग्य हैं:—

साईं ये न विरोधिये छोट बड़े सब भाय ।
ऐसे भारी वृक्ष को कुल्हरी देत गिराय ।

कुल्हरी देत गिराय, मार के ज़मीं गिराई।
टूक टूक कै काट समुद्र में देत बहाई।
कहि 'गिरिधर' कविराय फूट जिहि के घर आई।
हरिनाकस्यप कंस, गये बलि रावण साई॥

साईं बेटा बाप से बिगरे भयो अकाज।
हरनाकस्यप कंस को, गयो दुहुन को राज।
गयो दुहुन को राज, बाप बेटा में बिगरी।
दुश्मन दावागीर, हँसे महि मण्डल नगरी।
कहि "गिरिधर" कविराय, युगन याही चली आई।
पिता पुत्र के बैर, नफा कहु कौने साईं॥

साईं अपने भ्रात को क्यौं न दीजे त्रास।
पलक दूर नहीं कीजिये, सदा राखिये पास।
सदा राखिये पास, त्रास कबहुं नहिं दीजे।
त्रास दियो लंकेश, ताहि की गति सुनि दीजे।
कहि "गिरिधर" कविराय राम सं मिलयो जाई।
पाय विभीषण राज लंकपति बाज्यो साईं॥

डर नहीं ग़ैर का जो कुछ है सो अपना ही डर है।
हमने जब खाई है अपने ही से ज़क खाई है॥ (हाली)

चिऊंटियों में इत्तहाद और मक्खियों में इत्तफ़ाक़!
आदमी का आदमी दुश्मन ख़ुदा की शान है॥ (हाली)

———

उद्यम करो ।

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
नहि सिंहस्य सुप्तस्य प्रविशान्ति मुखे मृगाः ॥

उद्यम करने से कार्य्य सिद्ध होते हैं, मनोर्थों अर्थात ख़याली पलाओ पकाने से सिद्ध नहीं होते, जैसे सोए हुए शेर के मुंह में हिरण खुद बखुद नहीं आ पड़ते ॥

सर्वत्र एक अपूर्व युग का हो रहा सञ्चार है ।
देखो, दिनों दिन बढ़ रहा विज्ञानका विस्तार है ॥
अब तो उठो क्या पड़ रहे हो व्यर्थ सोच विचार में ।
सुखदूर, जीना भी कठिन है श्रम बिना संसार में ॥
[मैथिलीशरण गुप्त]

چه خورد شیر شرزه دربن غار ،
باز افتاده راچه قوت بود - (سعدی)

चे खुरद शेर शरज़ा दर बुन ग़ार ।
बाज़ उफ़तादा रा चे क़ुत बवद ॥ [सादी]

ज़ोरावर शेर अपनी मांद के भीतर बैठा हुआ क्या खा सकता है ? चुप चाप बैठे हुए बाज़ को क्या भोजन मिलेगा ।

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैवरिपुरात्मनः ॥१५६
गीता ६-५ ॥

मनुष्य को उचित है, कि आप ही अपने को नष्ट होने

से बचावे। अपने को दुःख में न पड़ने दे। निश्चय करके मनुष्य आप ही अपना बन्धु और आप ही अपना शत्रु है।

God help those who help themselves.

परमात्मा उनकी की सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते हैं।

همت بلند دار که نزد و خلق ،
باشد بقدر همت تو اقتدار تو ـ

हिम्मत बलंद दार कि नज़दे ख़ुदाओ ख़लक़।
बाशद बक़दरे हिम्मते तो इक़तदारे तो॥

ऊंची हिम्मत रख, क्योंकि परमात्मा तथा लोगों के समीप तेरी प्रतिष्ठा तेरे उद्योग और हिम्मत के अनुसार ही होगी।

बशर को है लाज़िम कि हिम्मत न हारे।
जहां तक कि हो काम अपने सँवारे॥

ख़ुदा के सिवा छोड़ दे सब सहारे।
कि हैं आरज़ी ज़ोर कमज़ोर सारे॥

अड़े वक्त तुम दायें बायें न झांको।
सदा अपनी गाड़ी को गर आप हांको॥ (हाली)

आत्मा में परमात्मा ।

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पि,
रापः स्रोतस्स्वरणीषु चाग्निः ।
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ ।
सत्येनैनं तपसा योऽनु पश्यति ॥१५७॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् १—१५)

जैसे तिलों में तैल, दधि में घृत, झरनों में जल, और अरणियों [विशेषकाष्ठ] में अग्नि है। इसी प्रकार आत्मा में यह परमात्मा साक्षात् किया जाता है। परन्तु वह परमात्मा सच्ची तपश्चर्या से ही साक्षात् हो सकता है "अन्यथा नहीं" ॥

बैरागिनि भूली आप में जल में खोजै राम ॥
जल में खोजै राम जाय के तीर्थ छानै ।
भरमै चारिउ खूट नहीं सुधि अपनी आनै ॥
फूल माहिं ज्यों बास काठ में अग्नि छिपानी ।
खोदे बिनु नहिं मिलै अहै धरती में पानी ॥
जैसे दूध घृत छिपा छिपी मिहंदी में लाली ।
ऐसे पूरन ब्रह्म कहुं तिल भरि नहिं खाली ॥ [पलटूदास]

तेरा सांई तुझ में ज्यों पुहुपन में बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर २ ढूंढै घास ॥

जा कारन जग ढूंढिया सो तो घट ही माहिं।
परदा दिया भरम का ता तें सूझै नाहिं॥
समझै तो घर में रहे परदा पलक लगाय।
तेरा साहिब तुझ में अनत कहुं मत जाय॥
जेता घट तेता मता बहु बानी बहु भेष।
सब घट व्यापक है रहा सोई आप अलेख॥
भूला भूला क्या फिरै सिर पर बंधि गई बेल।
तेरा सांई तुज्झ में ज्यों तिल मांही तेल॥
ज्यो तिल मांही तेल है ज्यों चकमक में आगि।
तेरा सांईं तुज्झ में जागसके तो जागि॥
ज्यों नैनन में पूतरी यों खालिक घट मांहि।
मूरख लोग न जानहीं बाहर ढूंढन जाहिं॥
पावक रूपी सांइयां सब घट रहा समाय।
चित चमकक लागै नहीं तातें बुझि बुझि जाय॥ [कबीर]
कोई दौड़े द्वारिक कोई कासी जाहिं।
कोई मथुरा को चले साहिब घट ही मांहीं॥
मंझे चेला मझ गुरु मझे ही उपदेश।
बाहर ढूंढहि बावरे जटा बंधाये केस॥
सब घट माहैं रमि रहा बिरला बूझई कोई।
सोई बूझई राम को रामसनेही होई॥ [दादू]
हरि हिरदै ढूंढत फिरै, जल थल प्रतिमा वाम।
ज्यों कंधे लरिका लिये, देति ढिंढोर ग्राम॥ (शिवदासराय)

नाहक़ अपने पाओं तोड़े यह न समझा ज़ाहिदा।
वह रगे जाँ से भी है नज़दीक काबा दूर है॥ (वक़)

देखे काबा में फिरा पूछता मैं तेरा निशां।
दिल ही में क़िबला नमा था मुझे मालूम न था॥
लामकाँ अर्शेमुअल्ला पै कहें नखून नशाँ।
लेक वह फ़रज़ा खुदा था मुझे मालूम न था॥
मिसल आहू के सर गर्दां फिरा सहरा में।
नाफ़ में नाफ़ा छुपा था मुझे मालूम न था॥
हैफ़ नादानो से ज़मज़म का कहा आवे हयात।
दिल ही में आबे बक़ा था मुझे मालूम न था॥(मोजदत्त)

काबा व मस्जिद में जाते हो भला जी किस लिये।
वह तो है दिल में तुम्हारे फिरते हो तुम जिस लिए॥(तराब)

मनुष्य जन्म दुर्लभ है।

जातिशतेन लभते किल मानुषत्वं,
तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विजत्वम्।
यो न पालयति लालयतीन्द्रियाणि,
तस्याऽमृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात्॥ १५८

(गरुड़पुराण)

सैंकड़ों गर्भ यातनाएं भुगतने के पश्चात मनुष्य का

शरीर प्राप्त होता है, हे ! गरुड़ उस मनुष्य देह में भी द्विजत्व बहुत ही दुर्लभ है। परन्तु जो द्विजाति में जन्म पाकर भी स्वधर्म का पालन न करे और अपनी इन्द्रियों के क्षणभङ्गुर सुखाभास में लिप्त रहे उसके हाथ में आया हुआ अमृत गिर जाता है।

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाँचत जेही।
बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थनि गावा॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषय रत मंद मंद तर।
काँच किरचि बदले जिमि लेहीं। करते डार परम मन देही॥

(तुलसीदास)

दुर्लभ मानुष जनम है देह न बारं बार।
तरवर ज्यों पत्ता झड़ै बहुरि न लागै डार॥ (कबीर)
भरमत भरमत आइया, पाई मानुष देह।
ऐसो अवसर फिर कहाँ न महिं जल्दी लेह॥

मंजुल मनुष्य देह पाय महा पुन्यहीतें,
जामें सब ज्ञान जीव पूरनहि पावे है।
उनतें अमित उर विमल विराग गहि,
मुक्तिकों मिलाइ दुख जन्मकों जरावे है॥
तिनकों तूं दूर तजि विषय विलासमाहिं,
मोद मन मानि अति आपति उपावे है।
"गोविंद" कहत तातें कौडिन के काज कैसें,
नीको नर जन्म हीरो हाथतें गुमावे है॥

वह वृथा अनमोल जीवन खो रहा ।
धर्म धन जिस ने कमाया कुछ नहीं ॥ (शंकर)

بے فائدہ ہر کہ عمر در باخت،
چیزے نخرید و زر بینداخت - (سعدی)

बेफ़ाइदा हर कि उमर दरबाख़्त ।
चीज़े न ख़रीद ब ज़र बयन्दाख़्त ॥ (सादी)

जिसने आयु को अकार्थ खो दिया उसने कोई वस्तु न ख़रीदी और धन को व्यर्थ लुटाया ॥

युवा अवस्था का लाभ ।

यावत्स्वस्थमिदं देहं यावन्मृत्युश्च दूरतः ।
तावदात्महितं कुर्यात्प्राणान्ते किं करिष्यसि ॥

जब तक शरीर तन्दरुस्त है और मृत्यु भी दूर है, ऐसे अवसर में ही आत्मा का हित कर लेना चाहिये प्राणान्त अर्थात मृत्यु के समय कुछ नहीं हो सकेगा ॥

اے کہ دستت میرسد کارے کن،
پیش از آں کز تو نیاید ہیچ کار - (سعدی)

ऐ कि दस्तत मेरसद कारे कुन ।
पेश अज़ आँ कज़ तो नियायद हेचकार ॥ (सादी)

ऐ मनुष्य जहां तक तेरा हाथ पहुंचता है काम करले

इसके पश्चात तू कुछ कर न सकेगा अर्थात जब तक हाथ पाओं में शक्ति है, ईश्वर भक्ति तथा उपाकार आदि शुभ काम करने योग्य हैं, शक्ति हीन होने पर कुछ नहीं होता ॥

कुछ करलो नौ जवानों उठती जवानियां हैं।
खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा ॥ (हाली)

ज़बां चलती है गोया आज कुछ ज़िकरे खुदा करले।
अजल आयेगी फिर हरगिज़ न देगी बात की फ़ुरसत ॥

जौं लों तन राजत है रोगतें रहत सदा,
तौं लों तप तीर्थ करि पुण्य को पसार ले।
जब लौं दुखदाय महा मौतही बसत दूर,
तौ लों सतसंग करि ज्ञान को बढारले ॥
जौ लौं कछु आवरन आवत न अंगन में,
तौ लों भजि ब्रह्म परलोकको सुधार ले।
"गोविंद" गहैगो काल आइ अनचित्यों तब,
तुम्हसे न होत कछु सोई चित धार ले ॥

"दादू" राम सँभालि ले जब तक सुखी सरीर।
फिर पीछैं पछताहिगा जब तन मन धरे न धीर ॥

पूर्वे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मति।
धातु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ॥१६

पहिली अवस्था में जो शान्त है, मेरी सम्मति में वह

शांत है। वर्ना धातुओं के क्षीण हो जाने पर कौन विषयों से नहीं हट जाता ॥

چه سود از دزدی آنکه توبه کردن ؛
که نتوانی کمند انداخت بر کاخ –
جوانا رہ طاعت امروز گیر ؛
که فردا جوانی نیائید زپیر –
جوان گوشہ نشین شیر مرد راہ خداست ؛
که پیر خود نتواند ز گوشهٔ برخاست – (سعدی)

चे सूद अज़ दुज़्दी आंगह तोबा करदन।
कि नतवानी कमन्द अन्दाख़्त बर कख़॥
जवाना रहे ताइत इमरूज़ गीर।
कि फर्दा जवानी नियायद ज़ पीर॥
जवान गोशानशीं शेर मर्द राहे खुदास्त।
कि पीर खुद नतवानद ज़ेगोशए बरख़ास्त॥ [सादी]

चोरी से उस समय पश्चाताप करने का क्या लाभ है, जब कि तू महल पर कमन्द ही नहिं डालसकता।

हे युवक! आज ही भक्ति के रास्ते पर चल पड़
क्योंकि कल बुढ़ापे से जवानी नहीं आयेगी॥

तरुण अवस्था में जिन्हों ने एकान्त वासी हो कर ईश्वर का समरण किया है वेही सच्चे भक्त हैं। क्योंकि बूढ़ा मनुष्य तो हिल भी नहीं सकता॥

در جوانی توبہ کردن شیوۂ پیغمبریست ،
وقت پیری گرگ ظالم مے شود پرہیزگار –

दर जवानी तोबा करदन शेवाए पैग़म्बरीस्त।
वक़्ते पीरी गुर्ग ज़ालम मेशवद परहेज़गार॥

युवा अवस्था में तोबा करना अर्थात कुशकर्मों को त्याग देना, पैग़म्बरों का काम है। वृद्धावस्था में तो ज़ालम भेड़िया भी परहेज़गार बन जाता है।

ख़ुदा की याद जवानी में ग़ाफ़िलो करलो।
वगरना वक़्ते फ़ज़ीलत तमाम होता है॥ [आतिश]

मज़ा है जोशे जवानी में पारसाई का।
वह नाख़ुदा है जो किश्ती बचाए तूफ़ाँसे॥ [हफ़ीज़]

हर गुनाह से तोबा कर ली जब जवानी हो चुकी।
ज़ाहिदा! जन्नत में जाना कोई तुझसे सीख ले॥ [दाग़]

रुका हाथ जब बन गये पारसा तुम।
नहीं पारसाई यह है नारसाई॥ [हाली]

चली आती है नादां सुबह पीरी।
जवानी की गंवा मत बेख़बर रात॥ [ज़ुरअत]

पतिव्रत-धर्म ।

भर्तुः शुश्रूषयानारी लभतेस्वर्गमुत्तमम् ।
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् ॥
शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियाहिते रता ।
एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदलोके श्रुतः स्मृतः ॥

(वाल्मीकि-रामायण)

पति की सेवा करने से ही नारी उत्तम स्वर्ग को प्राप्त होती है, चाहे विद्वान, गुरु आदिकों को नमस्कार तथा पूजन करे या न करे। पति के प्रियहित में रत होकर उसको ही सेवा करे, यह स्त्रियों का धर्म वेद और स्मृति में वर्णन किया है।

अनसूया सीता जी को उपदेश देती हुई कहती हैं:—

कह रिषिबधू सरस मृदु बानी ।
नारिधरम कछु ब्याज बखानी ॥
मातु-पिता-भ्राता-हित-कारी ।
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमितदानि भर्ता बैदेही ।
अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥
धीरजु धर्म मित्र अरु नारी ।
आपदकाल परखिअहि चारी ॥

वृद्ध रोगबस जड़ धन हीना।
अंध बधिर क्रोधी अतिदीना॥
ऐसेहु पति कर किये अपमाना।
नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धरम एक ब्रत नेमा।
काय बचन मन पतिपद प्रेमा॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं।
वेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम मध्यम नीच लघु सकल कहउँ समुझाइ।
आगे सुनहिँ ते भव तरहिँ सुनहु सीय चितलाइ॥
उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसे।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धरम बिचारि समुझि कुल रहई।
सोनिकिष्ट तिय स्रुति असकहई॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई।
जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पतिबंचक पर-पति रति करई।
रौरव नरक कलपसत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी।
दुख न समुझ तेहिसम को खोटी॥

बिनु स्रम नारि परम गति लहई।
पति-व्रत-धर्म छाडि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जन्म जहँ जाई।
विधवा होई पाइ तरुनाई॥

भर्ता देवो गुरुर्भर्ता * धर्मतीर्थ व्रतानि च।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत्सति १६२

पति देवता है, पति गुरु है, धर्म तीर्थ व्रत भी पती ही है। इस लिए सब को परित्याग करके पतिव्रता स्त्री केवल पति की ही सेवा करे।

पतिहीसु प्रेम होइ पति ही सु नेम होइ,
पतिहीसु क्षेम होई पतिहीसु रत है।
पतिही ये यज्ञयोग पतिही है रस भोग,
पतिहीसु मिटै सोग पति ही को यत है॥
पतिही है ज्ञानध्यान पतिही है पुन्यदान,
पतिही है तीर्थस्नान पतिहीको मत है।

---

* पत्यौ जीवतियानारी उपोष्य व्रतमाचरेत्।
आयुष्यंहरते भर्तुः सा नारी नरकंव्रजेत्॥ पराशर० ४—१८।

पति के जीते जो स्त्री उपवास तथा व्रत करती है। वह अपने पति की आयु को घटातीहै। और आप नरक में जाती है।

पतिबिनु पत नांही पतिबिनु गत नांहि,
"सुन्दर" सकल विधि एक पतिव्रत है ॥

सूरा के नो सिर नहीं दाता के धन नाहिं ।
पतिव्रता के तन नहीं सुरति बसै पिउ माहिं ॥
पतिव्रता पति को भजै और न आन सुहाय ।
सिंह बच्चा जो लंघना तौभी घास न खाय ॥
पति बरता पति को भजै पतिपर धर विस्वास ।
आन दिसा चितवै नहीं सदा पीव की आस ॥ [कबीर]

साध्वी भार्या ।

यस्यपुत्रोवशीभूतो भार्या छंदानुगामिनी ।
विभवेयश्चसंतुष्टस्तस्य स्वर्ग इहैवहि ॥ १६३ ॥

(चाणक्य)

जिसका पुत्र वश में हो, स्त्री आज्ञानुसार चलने वाली हो, और जो धन धान्य पाकर संतोष रखता है, उस के लिए यहां ही स्वर्ग है ॥

नारसती जो मर्द की, ए दुनिया में होय ।
बिन संपत बासो सुखी, दुजा न जग में कोय ॥ [तु०]
पान पुराना घो नया, और कुलवंती नार ।
चौथी पीठ तुरंग की, स्वर्ग निशानी चार ॥ [गङ्ग]

शील सुरूप सुलक्षण लाज में, शुद्ध सुधा बच हैं मन भायक।
प्रेम पतिवृतसों परिपूरण, सपति साज सजे सब लायक॥
चातुरि चंचलताको तजे गति, मंद निरालस श्रीगुण लायक।
भाग्य भरे पतिभाव सराहत, ते युवती जग में सुखदायक॥

(बलदेव)

जाकों सुखदाय सनों नार नवयौवना है,
वाकों सुर लोकनकों सुख कौन कामको।
जाके तन लावन्यता राजत ललित सदा,
वाकों कहा काम अलंकार अभिराम को॥
जाके मनोरथ सिद्ध होय हिय चाहत में,
वाको सुरतरु कहा इन्द्र के अराम को।
"गोविंद" कहत जाको जस छायो जगत में,
वाकों कहा काम कहो राजही ललामको॥

زنے خوب فرمان بر پارسا ء
کند مرد درویش را پادشاہ -
چو مستور باشد زن خوبروے ء
بدیدار او در بہشت ست شوئے -

ज़ने ख़ूब फ़र्मानबर पारसा। कुनद मर्द दरवेश रा पादशाह॥
चु मस्तूर बाशद ज़ने ख़ूब रूए। बदीदार ओदर बहिश्तस्त शूए॥

(सादी)

आज्ञाकारिणी शुद्ध चरित्र और अच्छी स्त्री फ़क़ीर पति को.

भी राजा बना देती है। रूपवती और लज्जाशील पत्नि का दर्शन हो पुरुष के लिए स्वर्ग है ॥

स्पेन में यह कहावत प्रसिद्ध है:—

To him who has a good wife, no evil can come which he cannot Bear.

साध्वी स्त्री के स्वामी पर ऐसी कोई विपत्ति नहीं आ सकती, जिसे वह सहन न कर सके ॥

A Hearth of one's own and a good wife are worth gold and pearls.

निज गृह और साध्वी स्त्री सुवर्ण तथा मोतियों के समान है ॥

(गोथे)

कर्कशा गृहिणी।

लोकेषु निर्धनो दुःखी ऋणग्रस्तस्ततोऽधिकम्।
ताभ्यां रोगयुतो दुःखी तेभ्यो दुःखी कुभार्यकः ॥

संसार में निर्धन मनुष्य दुःखी है, उस से बढ़ कर वह मनुष्य दुःखी है जो कर्ज़दार है, और रोगी मनुष्य उससे भी अधिक दुखी है, परन्तु इन सब से अधिक वह दुखी है, जिसकी स्त्री कुलटा अर्थात बुरे स्वभाव से संयुक्त है ॥

सासुके बिलोके सिंहनीसी जमुहाइ लेह,
ससुर के देखे बाघनीसी मुह बावती ।
ननंदके देखे नागिनी सी फुफकारे बैठी,
देवर को देखे डाकिनीसी डर पावती ।
भनत "प्रभान" मोछैं जारतो परोसिन की,
खसमको देखे खाऊं खाऊं कर धावती ।
कर्कसा कसाइन कुबुद्धिनी कुलच्छनी यें,
करमके फूटे घर ऐसी नार आवती ॥

सास मरे ससुरा पजरे, इस बाखर में पलको न रहूंगी ।
सौत जिठानी छटी ननदी, अब एक कहेगी ता लाख कहूंगी ॥
जेठ जलावा को मारू पटा, सुन देवर की फबती न सहूंगी ।
ले बस अत नहीं पिया "शंकर" पीहर की कल गैल गहूंगी ॥

دل آرام باشد زن نیک خواه ،
ولیکن زن بد خدایا پناہ —
تهی پائے رفتن به از کفش تنگ ،
بلائے سفر به که در خانه جنگ — (سعدی)

दिल आराम वाशद ज़ने नेक ख़्वाह ।
वलेकिन ज़ने बद ख़ुदाया पनाह ॥
तही पाए रफ़तन वेह अज़ क़फ़शे तग ।
बलाए सफ़र वेह कि दरख़ाना जंग ॥ (सादी)
अच्छे स्वभाव वाली स्त्री दिल को सुख देने वाली होती

है, परन्तु खोटे स्वभाव वाली स्त्री से परमात्मा रक्षा करे। तंग जूती की अपेक्षा नंगे पाओं चलना अच्छा है, और घर में लड़ाई झगड़े की निस्बत यात्रा की यातनायें बेहतर हैं॥

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥१६५॥

दुष्ट स्त्री, मूर्ख मित्र, सामने बोलनेवाला नौकर, और सांप वाले घर में निवास इनके कारण मौत में कोई सन्देह नहीं है।

सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी।
कपटी मित्र शूल सम चारी॥ (तुलसीदास)

पूत कपूत कुलच्छन नारी, लडाक परोसि लजावन सारो।
भाई अदेखो पुरोहित लंपट, लोभियो मित्र अतीत धुतारो॥
चाकर चोर कठोर मुसाहिब, साहिब सूम दिवान ठगारो।
ब्रह्म भने सुन शाह अकब्बर, बारह बांध समुद्रमें डारो॥
(बीरबल ब्रह्म)

The venomous clamour of a jealous woman is a more deadly poison than a mad dog's tooth

(Shake.pear.)

پریشانی خاطر داد خواه
براندازد از مملکت بادشاه– (سعدی)

मियाज़ार आमी बयक ख़रदला ।
कि सुलतान शवानस्तो आमी गला ॥
मकुन ता तवानी दिले खलक़ रेश ।
वगर मे कुनो मेकनी वेखे ख़्वेश ॥
परेशानिए ख़ातरे दादख़्वाह ।
बर अन्दाज़द अज़ ममलिकत वादशाह ॥ (सादी)

राई के एक दाने के समान भी प्रजा को मत सताओ, क्योंकि, राजा गड़रिया है और प्रजा गल्ला। जहां तक होसके तू प्रजा का दिल मत दुखा। यदि तू ऐसा करता हैं, तो तू अपनी जड़ को उखेड़ता है। फ़रयादी के दिल की परेशानी राजा को राजसिंहासन से गिरा देती है।

पपीहे का प्रण।

पयोद हे वारि ददासि वा न वा,
त्वदेकचित्तः पुनरेष याचकः।
वरं महत्या म्रियते पिपासया,
तथापि नान्यस्य करोत्युपासनम् ॥१८७॥

हे मेघ ? तू जल दे या न दे, चातक को तो केवल तेरा ही आश्रय है। घोर प्यास से प्राण भले ही निकल जायँ, परन्तु, यह दूसरे की उपासना नहीं करता।

पपिहा का पन देख कर धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा तऊ न बोरी चंच॥ (कबीर)

व्याधा बधो पपीहरा परो गंग जल जाय।
चूंच मूंदि पीवे नहीं, धिग पिय मो प्रण जाय॥

(तुलसीदास)

एहो नीरधर हम नेहधर चातक हैं,
रटनि हमार घटि है न, कहैं फेरि फेरि।
भौंर कैसी दौर हम दौरिहैं न ठौर ठौर,
'द्विजश्याम' सुमन-समूहन को घेरि घेरि॥
चुनि कै अङ्गारन चकोर तौर लैहै नाहिं,
मोरहू को तौर लै न नाग खैहैं हेरि हेरि।
प्यास मरि जैहैं, द्वार और के न जैहैं योंही,
जन्म बितै हैं, नाम रावरो ही टेरी टेरी॥

कर्कशा स्त्री की विषैली कलह पागल कुत्ते के दांत से अधिक ज़हरीली होती है ॥

زن بد در سرائے مرد نکو،
هم دریں عالم ست دوزخ او-
زینهار از قرین بد زنهار،
وقنا ربنّا عذاب النّار - (سعدی)

ज़ने बद दर सराए मरदे निको।
हमदरीं आलमस्त दोज़खे ओ॥
ज़ीन्हार अज़ क़रीन बद ज़िन्हार।
वक़िना रबिना अज़ाबुलनार॥ (सादी)

सज्जन के घर में बुरी स्त्री का होना इसी संसार में नरक के समान है। सचेत रहो, दुष्ट साथी से सचेत रहो? हे परमात्मा हमें नरक के इस त्रास से बचा।

नारी अतिबल होत है अपनो कुलहि विनाश।
कौरव पांडव वंशको कियो द्रौपदी नाश॥
कियो द्रौपदी नाश कैकयी दशरथ मारेउ।
राम लषण से पुत्र तेउ वनवास सिधारेउ॥
कह "गिरिधर" कविराय सदा नर रहै दुखारी।
सो घर सत्यानाश जहां है अति बल नारी॥

राजा और प्रजा।

प्रजां न रञ्जयेद्यस्तु राजा रक्षादिभिर्गुणैः।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥१६६

(पञ्चतन्त्र)

जो राजा रक्षादि गुणोंसे अपनी प्रजा की रक्षा नहीं करता, उसका जन्म बकरी के गले के स्तनों की भांति व्यर्थ है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥
सोचिय नृपति जो नीति न जाना।
जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना॥ (तु० दा०)

دو کس دشمن ملک و دین اند
پادشاه بے حلم و زاهد بے علم (سعدی)

दो कस दुश्मने मुलको दीन अन्द।
पादशाह वे हिलम व ज़ाहिद वे इल्म॥ (सादी)

दो मनुष्य देश और धर्म के शत्रु हैं, एक तो दयाहीन राजा और दूसरा मूर्ख साधु।

میازار عامی بیک خردله
که سلطان شبانست و عامی گله
مکن تا توانی دل خلق ریش
وگر مے کنی مے کنی بیخ خویش

पांच पिशाच ।

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग-
मीनाः हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।
एकः प्रमादी स कथन्न हन्यते,
यः सेव्यते पञ्चभिरेव पञ्च ॥१६९॥

जब कि, हिरन, हाथी, पतङ्ग, भौंरा और मछली यह पांचों एक एक विषय के ग्राही होते हुए विषयों में फंस कर मौत का ग्रास बन जाते हैं, तो मनुष्य जो कि, रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श इन पांचों विषयों के फेर में फंसा रहता है, क्यों नष्ट न होगा ।

गज अलि मीन पतङ्ग मृग, इक इक दोष विनाश ।
जाके तन पांचों बसै, ताकि कैसी आश ॥
(सुन्दरदास)

"कबिरा" वैरी सबल हैं, एक जीव रिपु पांच ।
अपने अपने स्वाद को, बहुत नचावें नांच ॥
शोणित पीते हैं सदा, अटके पांच पिशाच ।
पांचों में मुखिया बना, प्रबल पञ्च-नाराच ॥ (शंकर)
लज्जतें करती हैं इन्सान को दुनियां में हलाक ।
ज़हर देती हैं यह ज़ालिम शक्करो शीरके साथ ॥ (अकबर)

अति परिचय से अनादर।

अतिपरिचयादवज्ञा सन्ततगमनादनादरो भवति।
मलये भिल्लपुरंध्री चन्दनतरूमिन्धनं कुरुते ॥१७०

अति परिचय से अवज्ञा होती है, बार बार आने जाने से निरादर होता है। जैसे कि, मलय पर्वतमें भील की स्त्री चन्दन के वृक्ष को ईंधन की जगा जलाती है।

अति परचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी चन्दन देत जराय॥ (वृन्द)

ज्ञान घटे कोई मूढ की संगत, ध्यान घटे विन धीरज लाए।
प्रीत घटे परदेश वसे अरु, भाव घटे नित ही नित जाए॥
शोच घटे कोई साधुकी संगत, रोग घटे कुछ ओषध खाए।
(कवि) 'गङ्ग' कहे सुन शाह अकब्बर, पाप घटे हरिके गुण गाए॥

بدیدار مردم شدن عیب نیستم
ولیکن نہ چنداں کہ گویند بس — (سعدی)

बदीदारे मरदम शुदन ऐब नेस्त।
वलेकिन न चंदां कि गोयन्द बस॥ (सादी)

लोगों से मिलने में कोई अवगुण नहीं है, परन्तु, इतना नहीं, कि वह "बस" कहदें, अर्थात् तंग आजायें।

सेवक को सुख कहां ।

स्वभिप्रायपरोक्षस्य परचित्तानुवर्तिनः ।
स्वयं विक्रीतदेहस्य सेवकस्य कुतः सुखम् ॥१६८

अपनी आशा के अनुसार न रहने वाले, दूसरे की इच्छानुसार काम करने वाले तथा स्वयं बिके हुए शरीह वाले सेवक को सुख कहां प्राप्त होसकता है ।

मौन बैठि रहैं तो सभा में मूक नाम पावैं,
बोले बार बार तो लबार सगरे कहैं ।
ढिग जाइ बैठ कहैं ठीठु दूरि बैठ कहैं,
अप्रगल्भ तहां कैसी भान्ति करके रहैं ॥
छमा करि रहैं तो डरप स्यार कहैं सब,
बराबरी करैं कहैं नीच के लच्छन हैं ।
"देवीदास" कहै जे पराए भये चाकर हैं,
ते बिचारे कहो कौन भांति सुखकों लहैं ॥

सेवक सुख चह मान भिखारी ।
व्यसनी धन सुभ-गति बिभिचारी ॥
लोभी जसु चह चार गुमानी ।
नभ दूहि दूध चहत ए प्रानी ॥ (तु० दा०)

نان جو خوردن و بر زمین نشستن،
به که کمر زرین بخدمت بستن–   (سعدی)

नाने जौ खुर्दनो बर ज़मीं निशस्तन।
बेह कि कमर ज़रीं बख़िदमत बस्तन॥ (सादी)

कमर पर सुनहरी चपरास बांधने और चाकरी में खड़े रहने की अपेक्षा जौ की रोटी खाना और भूमि पर बैठना अच्छा है।

नृ-योनि में हे हरि ! जो पठाना।
न भूल कर भी, दास मुझे बनाना॥
करो कृपा, हे त्रय-ताप-हारी।
दासत्व है दुस्तर-दुःख-कारी॥
(मन्न द्विवेदी)

सेवा समान अति-दुस्तर दुःखदायी।
दुर्वृत्ति और अवलोकन में न आई॥
जीना कभी न उसका जग में भला है।
जो पेट-हेत पर सेवन को चला है॥
(महावीरप्रसाद द्विवेदी)

اے شکم خیرہ بنانے بساز ،
تانکنی پشت بخدمت دوتا - (سعدی)

ऐ शिकम ख़ीरा बनाने बसाज़।
ता नकुनी पुश्त बख़िदमते दोता॥

हे साहसी पेट ! एक रोटी में सन्तुष्ट रह, ताकि तुझे दासता में अपनी पीठ को टेढ़ा न करना पड़े।

क्रमशः बढ़ कर फिर घटा है चन्द्रमा।
कभी पूर्णमा और कभी होती अमा॥
वृद्धि और क्षय साथ सभी के है सदा।
रहता कोई नहीं एक सा सर्वदा॥ (रामनरेश त्रिपाठी)

जो पावे अति उच्च पद ता को पतत निदान।
ज्यों तपि तपि मध्याह्नलों अस्त होत है भान॥ (वृन्द)

तनज़्ज़ल में तरक्क़ी है तरक्क़ी में तनज़्ज़ल है।
तमाशा देख ग़ाफ़िल माहे नौका माहे कामिल का॥ (नासख़)

है कौन सा कमाल कि जिस को नहीं ज़वाल।
है कौन सी नशात कि जिसको नहीं मलाल॥
है कौन सी हयात कि जिस को नहीं ममात।
है कौन सा वह दिन कि नहीं जिस के बाद रात॥
है कौन आफ़ताब कि जिस को गहन नहीं।
है कौन ऐश जिस का नतीजा महन नहीं॥
किस रौशनी के बाद में तारीकियां नहीं।
है कौन सी बहार कि जिस को खिज़ां नहीं॥ (फ़लक)

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरः सर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ॥१७४॥

(अभिज्ञान शकुन्तला)

एक तरफ़ तो चन्द्रमा नीचे गिर रहा है,और दूसरी तरफ़ अरुण की लाली प्रकट करते हुए सूर्य्य नारायण ऊपर चढ़ रहे हैं। सूर्य्य चन्द्र के एक साथ उदय और पतन को दिखला कर मानों विधाता संसार को यह शिक्षा देरहे हैं, कि सब दिन बराबर नहीं जाते।

सीत हरी दिन एक निशाचर, लङ्क लई दिन ऐसो हि आयो।
एक दिनां दमयंति तजि नल, एक दिनां फिर ही सुख पायो॥
एक दिनां बन पांडव गे अरु, एक दिनां छिति छत्र धरायो।
शोच प्रवीन कछु न करो, किरतार यहैं विधि खेल बनायो॥
(मेरामण)

कबू एक हाकम हुकम कुल आलम पर,
कबू एक क्रूरे बोल लोकन के सहिये।
कबू एक ऊंचो अटा बेठ घन घट जोत,
कबू एक झुंपड़ी में मेघ बुन्द सहिये॥
कबू एक भोजन कुल छतिसो बनाय खात,
कबू एक लूखि भाजि बिना लून लइये।
हारिये न हिम्मत बिसारिये न हरि नाम,
जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये॥
कबहूक बाग हाथ बाजते नगारे साथ,
कबहूक पांउ प्यादे शीश बोज सहिये।
कबहूक आप द्वार भोर है भिखारन की,
कबहूक पर द्वार याचनोहि चहिये।

दैव की प्रतिकूलता।

दैवे विमुखतां याते न कोप्यस्ति सहायवान्।
पिता माता तथा भार्या भ्राता वाथ सहोदरः १७१

दैव के प्रतिकूल होजाने पर कोई सहायता नहीं करता, और तो क्या; माता, पिता स्त्री और भाई भी सहायक नहीं बनते।

बन्धु विरोध करो सिगरो, झगरो नित होत सुधारस चाटत।
मित्र करै करनो रिपु को, धरनीधर देखि न न्याउ निपाटत॥
'राम' कहै विष होत सुधा, घर नारि सति पतिसों चित फाटत।
भा विधना प्रतिकूल जबै, तब ऊंट चढ़े पर कूकर काटत॥

विधि के विरचे सुजन हूं, दुर्जन सम ह्वै जात।
दीपहि राखे पवन ते, अञ्चल वहै बुझात॥ (वृन्द)

सब दिन होत न एक समान

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखं।
सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत् परिवर्त्तते॥१७२॥

सुख के पश्चात दुःख और दुःख के पीछे सुख होता है। मनुष्यों के सुख और दुःख चक्र की तरह घूमते रहते हैं।

सुख बीते दुःख होत है दुःख बीते सुख होत।
दिवस गये ज्यों निशि उदित निशिगत दिवस उद्दोत॥ (वृन्द)

Be ready for all changes in thy fortune,
Be consent when they happen, but above all.
Mostly distrust good fortune's soothing smile,
There lurk the danger, though we least suspect.

अपने भाग्य के हर एक परिवर्तन के लिये तू तय्यार हो जा। तू इस परिवर्तन में सर्वदा अविचल चित्त रह। साथ ही इस ओर भी ध्यान रख कि भाग्योदय के पीछे विघ्न बाधायें भी लगी हुई हैं। इस कारण भाग्य के उदय से उन्मत्त न हो॥

(हेवर्ड)

कस्यात्यतं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरिचदशा चक्रनेमिक्रमेण ॥१७३॥

संसार में सदा सुखी या सदा दुखी कोई नहीं रहता, मनुष्य की दशा गाड़ी के पहिये के समान कभी ऊपर चढ़ जाती है, और कभी नीचे गिर जाती है॥

संसार में किस का समय है, एक सा रहता सदा।
है निशि-दिवा-सी घूमती, सर्वत्र विपदा-सम्पदा॥
जो आज एक अनाथ है, नर नाथ कल होता वही।
जो आज उत्सव-मग्न है, कल शोक से रोता वही॥

(मैथिली शरण गुप्त)

सच्चा हितकारी ।

सुलभाः पुरुषाः राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः १७६

(महाभारत)

हे राजन ! निरन्तर प्रिय बोलने वाले पुरुष बहुत हैं, परन्तु सुनने में अप्रिय और वास्तव में हितकारी वचन कहने तथा सुनने वाले दुर्लभ हैं ।

वचन परमहित सुनत कठोरे।
सुनहि जे कहहि ते नर प्रभु थोरे ॥ (तुलसी दास)

अप्रियाण्यपि पथ्यानि ये वदन्ति नृणामिह ।
त एव सुहृदः प्रोक्ता अन्ये स्युर्नाम धारकाः १७७

(पञ्चतन्त्र)

इस संसार में जो मनुष्य अप्रिय परन्तु हितकारी वाक्यों को कहते हैं, वही सच्चे सुहृद हैं दूसरे नाम मात्र के सुहृद हैं ।

बुरे लगत सिख के वचन, हिये विचारो आप ।
करुवे भेषज बिन पिये, मिटै न तन को ताप ॥ (वृन्द)

بنزد من آں کس نکو خواہ تست ،
کہ گوئید فلاں خار درراہ تست –
چہ خوش گفت یک روز دارو فروش ،
شفا بائیدت داروئے تلخ نوش –

جز آن کس ندانم نکو گوی من ،
که روشن کند بر من آهوی من - (سعدی)

बनिज़्दे मन आंकस निको ख़ाह तुस्त ।
कि गोयद फ़लां ख़ार दर राह तुस्त ॥
चे ख़ुश गुफ़्त यक रोज़ दारू फ़रोश ।
शफ़ा बायदत दारुए तल्ख़ नोश ॥
जुज़ आंकस नदानम निको गोए मन ।
कि रोशन कुनद बर मन आहुए मन ॥ (सादी)

मेरे समीप वह मनुष्य तेरा शुभचिन्तक है, जो यह कहता है, कि अमुक कांटा तेरे रास्ते में है। एक औषधी बेचने वाले ने एक दिन क्या खूब कहा था, कि, यदि तुझ को स्वास्थ्य चाहिये, तो कटु औषधी का सेवन कर। उस मनुष्य के सिवा मैं अपना हितकारी और किसी को नहीं समझता, जो मुझ पर मेरा दोष प्रकट करे।

कबहूक मेवा अरु अम्ब से अजीर्ण होत,
कबहूक मुठी भर चूंन को न पइये।
हारिये न हिम्मत विसारिये न हरि नाम,
जाहि बिधि राखे राम ताहि बिधि रहिये ॥ (तुलसी)

जिन के तबेले बीच कोई दिन की बात है।
हरगिज़ इराकीओ अर्बी का न था शुमार ॥
अब देखता हूं मैं कि ज़माने के हाथ से।
मोची से कफ़शे पा को गठाते हैं वह उधार ॥ (सौदा)

मग़रूर हो न लश्करो तीरो तफ़ङ्ग पर।
रखता नहीं ज़माना है यह एक रङ्ग पर ॥
सबको डबोके रहता है गरदाबे इन्क़लाब।
मछली भी होती है कभी ग़ालिब निहङ्ग पर ॥
जिस वक्त वक्त गरदशे अय्याम का मिला।
करती है लूमड़ी भी तो हर्वा पलङ्ग पर ॥ (फ़लक)

———

चुग़लख़ोर ।

अहो खलभुजंगस्य विपरीतो वधक्रमः ।
अन्यस्य दशाति श्रोत्रमन्यः प्राणैर्वियुज्यते १७८॥

दुष्ट पुरुष और सर्प इन दोनों का वध क्रम अर्थात् जान से मारने का तरीक़ा एक दूसरे से विपरीत है, दुष्ट डंसता तो और के कान में है और प्राण किसी दूसरे के निकलते हैं।

चुग़ल सांपसे सरस है, सुन पिय चतुर सुजान ।
डसे और के कान में, हने और के प्रान ॥

चुगल न चूकै कबहुं को अरु चूकै सब कोई ।
बरकन्दाज कमानिया चूक उनहूं से होई ॥
चूक उनहुं से होय जो बान्धे बरछी गुल्ला ।
चूक उनहुं से होय पढ़ैं पण्डित औ मुल्ला ॥
कह "गिरिधर" कविराय कलाहु ते नट चूकै ।
चुगल चौकसीदार ससुर कबहूं नहि चूकै ॥

निन्दक एकहु मति मिलै पापी मिलो हज़ार ।
इक निन्दक के सीस पर कोटि पाप को भार ॥ (कबीर)

میان دو تن جنگ چوں آتش ست ،
سخن چین بدبخت هیزم کش ست - (سعدی)

मियाने दो तन जंग चूं आतशस्त ।
सख़ुन चीन बदबख़्त हैज़म कशस्त ॥ (सादी)

अवसर पर चूकना ।

निर्वाणदीपे किमु तैलदानं
चौरे गते वा किमु सावधानम् ।
वयो गते किं वनिताविलासः
पयो गते किं खलु सेतुबन्धः ॥१७५॥

दीपक के बुझ जाने पर तेल डालने, चोर के चले जाने के पश्चात सावधान रहने, आयु की समाप्ति अर्थात बुढ़ापे में स्त्री से भोग विलास करने और पानी गुज़र जाने पर पुल बांधने से कोई लाभ नहीं ।

अवसर बीते जतन को, करिबो नहिं अभिराम ।
जैसे पानी बह गये, सेत बन्ध कहि काम ॥
दीयो अवसर को भलो, जासो सुधरे काम ।
खेती सूखे बरसबो, घन को कौने काम ॥ (वृन्द)

का वर्षा जब कृषि सुखाने ।
समय चूकि पुनि कह पछिताने ॥ (तुलसी दास)

वक्त पर क़तरा बड़ा है अबरे खुश हङ्गाम का ।
जल गया जब खेत मेंह बरसा तो फिर किस काम का ॥

खेतियां जल कर हुई यारों की ख़ाक ।
अबर है घिर कर इधर आया अबस ॥ [हाली]

रास्ती बमूजब रज़ाए ख़ुदास्त ।
कस नदीदम कि गुम शुद अज़ रहे रास्त ॥ (सादी)

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी जीने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है :—

कहौं सत्य ही ईश कर, यह निदेश सब काहिं ।
सत्य पन्थ गहि आज लौं, कोऊ भटक्यो नाहिं ॥

گر راست سخن گوئی و دربند بمانی،
به زانکه دروغت دهد از بند رهائی - (سعدی)

गर रास्त सख़ुन गोई ओ दरबन्द बमानो ।
बेह ज़ांकि दरोग़त दिहद अज़ बद रहाई ॥ (सादी)

असत्य के द्वारा बन्दी ख़ाने से मुक्त होने की अपेक्षा यह अच्छा है कि तुम सत्य भाषण करो और कारागार में रहो ॥

वाल विवाह निषेध ।

उनषोड़श वर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥
जातो वा न चिरंजीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्त वालायां गर्भाधानं न कारयेत १८०

(सुश्रुत)

दो व्यक्तियों की लड़ाई अग्नि के समान है, और मन्द भाग्य चुग़ल ख़ोर उस में लकड़ी डालने वाला है।

सत्य-प्रतिष्ठा।

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥१७९॥

(महाभारत आदि पर्व अ० ७४ श्लो० १०२)

हज़ार अश्वमेध यज्ञ और सत्य की तुलना की जाये तो सत्य का ही पलड़ा भारी होगा।

गहो सत्य को मित्र ! कपट मिथ्या को त्यागो।
छल पैशाचिक कर्म समझ कर उस से भागो॥
माया में मत फँसो मोह-निद्रा को त्यागो।
जागो जागो बन्धु ! भला अब तो तुम जागो॥
हरिश्चन्द्र से स्वर्ग में तुम्हें देख दुख पा रहे।
उद्बोधन हैं कर रहे, अश्रु बहाते जा रहे॥ (स्नेही)

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे सांच हैं, ताके हिरदे आप॥ (कबीर)

सत्य संसार का सार है, सत्य शुद्ध व्यापार है।
सत्य सद्धर्म का धाम है, सत्य सर्वज्ञ का नाम है॥ (शंकर)

راستی موجب رضائے خداست،
کس ندیدم کہ گم شد از رہ راست - (سعدی)

१८ वर्ष से कम स्त्री में २५ वर्ष से कम पुरुष यदि गर्भाधान करता है, तो वह कोख में ही नष्ट हो जाता है, यदि उत्पन्न होता है, तो बहुत दिन जीता नहीं, जीता भी रहे तो दुर्वलेन्द्रिय अर्थात् कमज़ोर रहता है, इस लिए अत्यन्त बाला में गर्भाधान नहीं करना चाहिये ॥

वढ़ी इस पै यह कमसिनी की जो शादी ।
तो बुनियादे क़ौमी ही इसने हिला दी ॥
जहां लड़की सीमाला बन जाए दादी ।
न फैले वहां कैसे फिर नामुरादी ॥
कई पुश्त से हों जो बच्चों के बच्चे ।
न क्यों जिस्म और अक़ल में हों वह कच्चे ॥ (कैफ़ी)

करो न कमसिन का ब्याह देखो,
हुए हो इस से तबाह देखो ।
यह सख़्त तर है गुनाह देखो,
पढ़ो मनु शास्त्र उठा कर ॥ (फ़लक)

कितना अनिष्ट किया हमारा हाय ! बाल्य-विवाह ने !
अन्धा बनाया है हमें उस नातियों की चाह ने !
हा ! ग्रस लिया है वीर्य्य-बल को मोह रूपी ग्राह ने।
सारे गुणों को है बहाया इस कुरीति-प्रवाह में ॥
अल्पायु में हैं हम सुतों का व्याह करते किसलिए ?
गार्हस्थ का सुख शीघ्र ही पाने लगें वे, इस लिए ॥

वात्सल्य है या वैर है यह, हाय ! कैसा कष्ट है ?
परिपुष्टता के पूर्व ही बल-वीर्य्य होता नष्ट है ॥
प्रतिवर्ष विधवा-वृन्द की संख्या निरन्तर बढ़ रही,
रोता कभी आकाश है, फटती कभी हिल कर मही ।
हा ! देख सकता कौन ऐसे दग्ध-कारी दाह को,
फिर भी नहीं हम छोड़ते हैं बाल्य वृद्ध विवाह को ॥
(मैथिलीशरण गुप्त)

अरे नौउमर बच्चो ! कमसिनी की शादी होने में ।
वह आफ़त है कि जो आफ़त नहीं है जान खोने में ।
लड़कपन है तुम्हारा हैं अभी नशवो नमा के दिन ।
अभी जल्दी न करना स्त्री के साथ सोने में ।
ज़मीन अच्छी नहीं है तुख़म भी पक्का नहीं अब तक ।
अभी मसरूफ़ तुम होना न हरगिज़ खेत बोने में ॥
(फ़िदा)

शादी न कर अपनी क़बल तेहसीले अल्म ।
बुत हो कि परी हो ख़्वाह हो कोई मेम ॥ (अकबर)

है बचपन की शादी न ज़ेबा भलों को ।
न चोड़ो कुचल कर न कच्चे फलों को ॥ (बेताब)

परस्त्री गमन।

परदारा न गन्तव्याः सर्व वर्णेषु कर्हिचित्।
न हीदृशमनायुष्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥१८१॥

सब वर्णों में कोई भी पुरुष पर स्त्री से संयोग कदापि न करे इस से बढ़ कर आयु को नाश करने वाला कर्म तीनों लोकों में और कोई नहीं है।

पर नारी पैनै छुरी, मत कोई लावो अङ्ग।
रावण के दस सिर गये, पर नारी के सङ्ग॥ (कबीर)

कीन्हे बस लोक तीन रावन प्रतापी ऐसे,
भयो नाश ताको हर्न कीन्हो जब सिया को।
अग्निमुख परे सब कीचक पञ्चालीनसे,
रह्यो नहि रञ्च रस जस उप पिया को॥
इन्द चन्द भये मन्द भागो अहल्यासे मानो,
हर्ष ज्यूं गुमायो पिछताइ निज हिया को।
कहे "नीलकण्ठ" जाको ऐसो फल पाइवेको,
सोइ रस जानि सङ्ग करे परकिया को॥
परकीय रस बस भयो कर्न घेलो तबै,
गुर्जर में यवन प्रवेश कीनो ख्वारी है।

रावल पताइ जाकी कीरती सवाइ गइ,
खाइ माइ काली जबें बुरी चित धारी है॥
महीपत मल्हार सो ख्वार ह्वैके गयो कैद,
याकी ही विचारो मेद तहुं परनारी है।
कहे "नीलकण्ठ" केते केते मैं गिनाओं जिने,
कीन्ही है छिनारी याने बड़ी झख मारी है॥

स्वाधिन है घर की घरुनी, बरनी रविराम सरूप सरा है।
तोऊ कुजात कुनारी को सङ्ग, करे सोइ नीच में नीच खरा है।
ज्यों सरपूर भरे जल कों, तजि काद पिये पय कुम्भ भरा है।
झारिहि खात झपाट हि जात, पुनी फिर आत न लाज जरा है।
(रविराम—आदितराम)

कुलवन्त निकारहिं नारि सती।
गृह आनहिं चेरि निवेरि गती॥ (तु० दा०)

नकाही व्याही को छोड़ बैठे मुताई रण्डी को घर में डाला।
बनाया साहिब अमाम बाड़ा खुदा की मसजिद को तुमने ढाकर।
(जानसाहिब)

"सम्मन" चहु सुख देह को तो छोड़ो ये चारि।
चोरी चुगुली जामिनि और पराई नारि॥

शरणागत-रक्षा।

लोभाद्वापि भयाद्वापि यस्त्यजेच्छरणागतम्।
ब्रह्महत्यासमं तस्य पापमाहुर्मनीषिणः ॥१८२॥

(हितोपदेश)

लोभ से भय से अर्थात् किसी और कारण से जो शरणागत को छोड़ता है, उसको ब्रह्महत्या का महापाप होता है, ऐसा पण्डित जन कहते हैं ॥

सरनागत कहँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥

(तुलसी दास)

मनुज विशेषता।

आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥८३॥

खाना, सोना, डरना और विषय भोग करना मनुष्यों और पशुओं में एक समान हैं, मनुष्यों में केवल धर्म हो

अधिक है, सारांश यह है कि मनुष्य में यदि धर्म न हो तो वह पशु है।

چو انسان نداند بجز خوردو خواب ،
کدامش فضیلت بود بر دواب - (سعدی)

चु इन्साँ नदानद बजुज़ खुर्दों ख़्वाब।
कदामश फ़ज़ीलत बवद बर दुआब ॥ (सादी)

जब मनुष्य खाने और सोने के अतिरिक्त और कुछ न जाने तो चारपाए अर्थात् पशु से बढ़ कर नहीं हो सकता॥

प्रातःकाल जाग्रति।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्। ॥
काय क्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्वार्थमेवच ॥८४

(मनुस्मृति)

ब्राह्म मुहूर्त अर्थात् चार घड़ी रात रहते उठ कर धर्म और अर्थ का चिन्तन तथा शारीरिक रोगों का निदान और (वेदतत्वार्थ) परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।

صبح خیز و روح دل از ذکر سبحان شاد کن،
پلد نادان آنچه میخوانی زبانی یاد کن-

सुबह ख़ेज़ो रूहे दिल अज़ ज़िकरे सुबहाँ शाद कुन।
पंदे नादां-आंचे मेख़्वानी ज़बानी याद कुन॥

प्रातःकाल जाग्रत हो कर आत्मा को परमात्मा की स्तुति से प्रसन्न करो। और मूर्खों के लिये उपदेश जो तुम पढ़ते हो उन्हें ज़बानी याद करो॥

शाम का सोना, सवेरे सुबह का उठना शताब।
दिल को बख़्शे रौशनी चेहरे को बख़्शे आबोताब॥

Early to bed and early to rise,
Make the healthy wealthy and wise.

रात को शीघ्र सोने और प्रातःकाल शीघ्र जागने से तू स्वास्थवान, धनवान और बुद्धिवान बनेगा।

मृत्यु मीमांसा।

पंडिते चैव मूर्खे च बलवत्यपि निर्बले।
ईश्वरे च दरिद्रे च मृत्यु सर्वत्र तुल्यताः॥८५॥

विद्वान् हो चाहे मूर्ख, बलवान् हो अथवा दुर्बल और धनवान् हो चाहे कङ्गाल, मृत्यु सब के लिए समान है।

कै गरीब सिर टोकरी, कै सिर छत्तर होय।
जन्म मरन में एक से, सहजो भांति न दोय॥
मरना है रहना नहीं, जाना वाही ठौर।
सहजो कै कंगाल हो, कै हो द्रव्य कड़ोर॥ (सहजोबाई)

माणक हीरा लाल, खजाना मोतियां।
सज राणी शणगार, सनमुख जोतियां॥
दिन दिन अधिक सुगन्ध लगाते देह में।
ऐसे भोगी भूप मिले सब खेह में॥
जोगी करते जोग, के आसन बांधते।
अखण्ड भभूत लगाय जटा सिर बांधते॥
साधि कलप केदार, के ततपर होयरे।
काल व्याल की झपट, बचा नहि कोयरे॥ (वाजिद–वजीद)

भेड़ें चराने वाला गडरिया अपनी अज्ञान की अवस्था में भी वैसा ही मरेगा, जैसा कि जालीनूस ऐसा भारी चकित्सक ज्ञानी हो कर मरा था। (मुतनब्बी)

مزن دم ز حکمت که در وقت مرگ ،
ارسطو دهد جان چو بیچاره گرد – (حافظ)

मज़न दम ज़ हिकमत कि दर वक्ते मर्ग।
अरस्तु दिहद जान चु बेचारा गर्द॥ (हाफ़िज़)

चकित्सक होने की डींग मत मार कि मृत्यु के समय अरस्तु एक बेचारे गंवार की भांति प्राण त्यागता है॥

چو آهنگ رفتن کند جان پاک ،
چه بر تخت مردن چه بر روئے خاک – (سعدی)

चु आहंगे रफ़तन कुनद जाने पाक।
चे बर तख़्त मुर्दन चे बर रूए ख़ाक॥ (सादी)

पवित्र प्राण जब शरीर त्याग देने का संकल्प करले, तो चाहे राज-सिंहासन पर मृत्यु हो, चाहे धूल में; (सब समान है) ॥

कितने मुफ़लिस होगए कितने तवंगर होगये।
ख़ाक में जब मिल गये दोनों बराबर होगये ॥ (ज़ौक़)

इस से है ग़रीबों को तसल्ली कि अजल ने।
मुफ़लिस को जो मारा तो न ज़रदार भी छोड़ा ॥ (ज़फ़र)

है बादशाहे मुल्क कि दरवेशे बेनवा।
ज़रदार है अमीर कि मोहताज़ है गदा ॥
यकसां है अंबिया इसे यकसां हैं औलिया।
कोई ऋषि बचा है न कोई मुनि बचा ॥
इस की सलाए आम यह नज़दीको दूर है।
आया है जो यहां उसे जाना ज़रूर है ॥ (मेहर)

दुनिया में अपना जी कोई बहला के मर गया।
दिल तंगियों से और कोई उकता के मर गया ॥
आक़िल था वह तो आप को समझा के मर गया।
बे अक़ल छाती पीटे के घबरा के मर गया ॥
दुख पा के मर गया कोई सुख पाके मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया ॥
आशिक़ होकर किसी ने किसी गुल की चाह की।
माशूक़ी काम आई किसी के न आशिक़ी ॥

और जब अजल की दोनों से आकर लगन लगी।
आशिक़ ने अपने इश्क़ बढ़ाने में जान दी॥
दिलबर भी अपने हुस्न को चमका के मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आ के मर गया॥
क्या काले पीले शकल के क्या गोरे गुलअज़ार।
आशिक़ कोई है और कोई माशूक़ तरहदार॥
आक़िल हलीमो आमलो फ़ाज़ल रसालदार।
पण्डित नजूमी वैद्य वे नादान वे होश्यार॥
दो दिन की शान हर कोई दिखला के मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया॥ (नज़ीर)

इज़्ज़त कुछ है न ज़िल्लत कुछ चीज़।
कुछ भी नहीं फ़र्क़ इन में ऐ यार अज़ीज॥
जब मौत ने ख़ाक कर दिया दोनों को।
होती नहीं शाहों की गदाओं से तमीज़॥ (मेहर)

"जौहर" बचेगा कोई न दुनिया में जान लो।
मौत अज़ बराए आलमो आलम बराए मौत॥

अवगच्छति मूढ चेतनः
प्रियनाशं हृदि शल्यमर्पितम्।
स्थिरधीरस्तु तदेव मन्यते
कुशलद्वारतया समुद्धृतम् ॥१८६॥ (रघुवंश)

जो लोग ना समझ (मोमुग्ध) हैं, वे ही किसी प्रियजन के मरण को हृदय में लगने वाली कटारी समझते हैं। किन्तु जो लोग ज्ञानी महापुरुष हैं। वे उसी (प्रिय जन वियोग) को कल्याण का द्वार खुलना मानते हैं॥

जा मरने से जग जरे मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं पूरन परमानन्द॥ (कबीर)

मज़े जो मौत के आशिक़ ब्यां कभू करते।
मसीहो ख़िज़र भी मरने की आरज़ू करते॥ (ज़ौक़)

हस्ती से ज़ियादा है कुछ आराम अदम में।
जो जाता है यहां से वह दोबारा नहीं आता॥ (ज़ौक़)

आदमीकोमौत के आन को लाज़िम है खुशी।
ईद है जिस रोज़ छुटकारा हुआ महबूस का॥ (आतिश)

मौत आई इश्क में तो हमें नींद आगई।
निकली बदन से जान तो कांटा निकल गया॥

जो देखी हिस्ट्री इस बात का कामिल यक़ीं आया।
उसे जीना नहीं आया जिसे मरना नहीं आया॥

किसी के मरने से यह न समझो कि जान वापिस नहीं मिलेगी।
बईद शाने करीम से है किसी को कुछ दे के छीन लीना॥

(अकबर)

फ़क़ीरों से सुना है हमने "हातम"।
मज़ा जीने का मरजाने में देखा ॥
मौत यह मेरी नहीं मेरी अजल की मौत है।
क्यों डरूं इस से कि मर कर फिर नहीं मरना मुझे ॥
(इक़बाल)

देखा जो वादे मर्ग तो मरना ज़ियां न था।
बदले फ़ना के मुल्के बक़ा कुछ गिरां न था ॥ (अनवर)
है प्यामे मर्ग में मज़मर नवीदे ज़िंदगी।
ता बक़ा की शक्ल पैदा हो फ़ना हो जाइये ॥ (असर)

Of all the wonders that I have heard,
It seems to me more strange that should fear,
Seeing that death, a necessary end,
Will come when it will come. (Shakespear.)

मुझे आश्चर्य है लोग मौत से भयभीत क्यों होते हैं। वह तो एक न एक दिन अवश्य आती है। जब मरना होगा तब मर ही जायेंगे ॥ (शेक्सपियर)

Death may come
He will find me ready
Happier man am I.

मृत्यु चली आवे वह मुझे तैय्यार पाएगी मैं प्रसन्न रहने वाला मनुष्य हूं ॥

Death is the waiting room where we robe ourselve for immortality. (Spurgeon)

मृत्यु एक विश्रामस्थान के समान है, जहां पर हम अपने आपको अमरत्व प्राप्त करने के लिए नाश कर देते हैं।

जीस्त कहते हैं जिसे है इज़तराब।
मौत कहते हैं जिसे आराम है॥ (असीर)

जिस शख़्स ने मौत को फ़ना माना है।
ऐ "मेहर" वह शख़्स मैहज़ दीवाना है॥
दरवाज़ए ज़िंदगी है मर्ग ऐ ग़ाफ़िल।
इस दर से तुझे और कहीं जाना है॥

———

"साबत" यह मौत का तअज्जब कैसा।
मरना जीने की इल्लतग़ाई है॥

जो मज़े हैं मर्ग में सो हमसे पूछा चाहिये।
कोई जानें आह क्या लज्ज़त है मर जाने के बीच॥ (दर्द)

स्वशरीर शरीरिणा वपि
श्रुत संयोग विपर्ययौ यदा।
विरहः किमिवानुतापयेद्
वद वाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम् ॥१८७॥ (रघुवंस)

जब अपने शरीर और शरीर में स्थित आत्मा का ही परस्पर संयोग और वियोग देखा जाता है। तो विद्वान

लोग पुत्र, स्त्री आदि बाहरी विषयों के वियोग में क्यों शोक करें।

मरगे अहबाब पै क्यों जान दे देते हो।
ऐ "फ़िदा" तुम भी तो एक रोज़ हो मरने वाले॥
करें जुदाई का किस किस की रंज हम ऐ "ज़ौक़"।
कि होने वाले हैं सब हम से अन्क़रीब जुदा॥

अहन्यहानि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषा जीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् १८८

(महाभारत)

प्राणीवर्ग प्रतिदिन मृत्यु को प्राप्त होरहे हैं, परन्तु शेष प्राणी जीवन की लालसा कर रहे हैं, इससे अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है।

अजब मैहफ़ल है यह दुनिया जहां हर एक बेदिल है।
मगर तुर्फ़ा यह है फिर देखिए हर एक मायल है॥

(अदब)

वह कौनसा ग़म है कि जो दुनिया में नहीं है।
और उस पै भी दिलकश यह ग़म आबाद गज़ब है॥

(ज़ौक़)

अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरीरिभिः।
अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम्॥१८९

काल की चेष्टा बड़ी कष्टदायक है, जो हंसते, गाते, पढ़ते नज़र आते थे, वह आज नहीं दीखते।

ज़ालम अजल बता दे, वह सूरतें कहां हैं।
वह दिल फ़रेब नक़शे वह मूरतें कहां हैं॥
उन नेक ख़सलतों को मादूम कर दिया है।
बेदर्द मौत तूने यह क्या ग़ज़ब किया है॥ (फ़लक)
गुलचीं का रंग तूने उड़ाया है ऐ अजल।
वह चुन लिए हैं फूल जो चीदा थे बाग़में॥

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवित-मुच्यते बुधैः। क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥१९०॥ (रघुवंश)

पण्डितों का कहना है, कि मरना ही शरीर धारियों की प्रकृति (उनके लिये स्वाभाविक) है और जीवित रहना ही विकृति (अस्वाभाविक) है। घड़ी भर इस संसार में जीवित रहना (सांस लेना) ग़नीमत समझना चाहिये।

غنیمت شمار ایں گرامی نفس ،
که بے مرغ قیمت ندارد قفس - (سعدی)

ग़नीमत शुमार ईं गरामी नफ़स।
कि बे मुर्ग़ क़ीमत नदारद क़फ़स॥ (सादी)

इस प्यारे श्वास को ग़नीमत समझना चाहिये, क्योंकि पक्षी के विना पिंजरे का कोई मूल्य नहीं होता॥

غنیمتے شمرائے شمع وصل پروانہ ،
کہ ایں معاملہ تا صبحدم نخواہد ماند۔ (حافظ)

ग़नीमते शुमर ऐ शमा वस्ले परवाना।
कि ईं मुआमला ता सुबहदम नख़्वाहिद मानद् ॥ (हाफ़िज़)

हे दीपक! परवाने के मिलाप को ग़नीमत समझ, क्योंकि यह बात प्रातःकाल तक न रहेगी।

ग़नीमत जान लो मिल बैठने को।
जुदाई की घड़ी सिर पर खड़ी है ॥
बहारे बाग़ दो दिन हैं ग़नीमत जान ऐ बुलबुल।
ज़रा हंस बोलले हो ज़मज़मा परवाज़ चह चह कर ॥

थोथा चना बाजे घना।

सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्द-
मर्धो घटो घोषमुपैति नूनम्।
विद्वान् कुलीनो न करोति गर्वं,
गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति ॥१९१॥

जलसे भरा हुआ घड़ा शब्द नहीं करता है, आधा घड़ा ही शब्द करता है। इसी प्रकार विद्वान् और कुलीन पुरुष अहङ्कार नहीं करते, गुणहीन मनुष्य ही बहुत बकवाद करते हैं।

سراسیمہ گوید سخن پر گزاف ،

چو طنبور بیمغز بسیار لاف ۔ (سعدی)

सरासीमा गोयद सखुन पुर गज़ाफ़ ।

चु तम्बूरे बेमग़ज़ बस्यार लाफ़ ॥

अस्थिर विचार वाला मनुष्य अहङ्कार भरे शब्द बोलता है, जैसे कि ख़ाली तम्बूर बहुत शोर करता है ।

An empty vesel makes much noise.

ख़ाली बरतन बहुत शोर करता है ।

बन्दे मातरम् ।

वंदे मातरम् सुजलां सुफलां मलयजशीतलां शस्यश्यामलां मातरं बन्दे ॥१९२॥

शुभ्रज्योत्स्नांपुलकितयामिनीम् फुल्लकुसुमितद्रमदलसुहासिनीम् सुमधुरभाषिणीम् सुखदां वरदां मातरं बन्दे ॥१०३॥

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम् धरणीम् भरणीम् मलयजशीतलां शस्यश्यामलां मातरं बन्दे ॥१९४॥

हे सुन्दर जलों से पूर्ण और सुन्दर फलों से भरपूर भारत-माता ! मैं तुझे नमस्कार करता हूं, पुनः हे शीतल-मन्द-सुगंध-वायु-युक्त, श्यामलता लिये हुए हरी हरी खेतियों से लह लहाती हुई माता ! मैं तुझे नमस्कार करता हूं ।

पत्र, पुष्प, वेल, वृक्ष को खिलाने वाली मधुर-भाषिणी सुखदात्रि माता तुझे मेरा नमस्कार हो, हे धारण पोषणादि गुणों से सुभूषित माता ! तुम्हें वारम्वार प्रणाम हो ।

हे मातृभूमि ! तेरे चरणों में सिर झुकाऊं ।
मैं भक्ति भेंट अपनी सेवा में तेरी लाऊं ॥
माथे पै तू हो चन्दन छाती पै तू हो माला ।
जिह्वा पै गीत तू हो मैं तेरा नाम गाऊं ॥
जिस से सपूत जन्मे श्रीराम कृष्ण जैसे ।
उस तेरी धूल को मैं निज सीस पर चढ़ाऊं ॥
वे देश मान वाले चढ़ कर उतर गये सब ।
गोरे रहे न काले तुझ को ही एक पाऊं ॥
सेवा में तेरी अपने भेदों को भूल जाऊं ।
वह पुण्य नाम तेरा प्रति दिन सुनुं सुनाऊं ॥
तेरे ही काम आऊं तेरा ही मन्त्र गाऊं ।
तन और देह तुझ पै बलिदान मैं चढ़ाऊं ॥

(इन्द्र वेदालङ्कार)

ओ बे नज़ीर भारत ! मेरी बज़ुर्ग माता ।
ठण्डे जलों की दायक शीरी फलों की दाता ॥

बाग़ों में तेरे हरसू सबज़ा है लहलहाता ।
पैके सबा है तेरा दिल की कली खिलाता ॥
दरयाए गङ्गा तुझ में कुदरत दिखा रहा है ।
पर्वत हिमाला तेरी अज़मत बढ़ा रहा है ॥
अज़मत का तेरी डङ्का फिर से जहां में गूंजे ।
काबे में बुतकदे में कोनो मकां में गूंजे ॥
फैले हवा के अन्दर आबे रवां में गूंजे ।
पड़ जाए धूम हरसू अर्ज़ आस्मां में गूंजे ॥
फिर आफ़ताबे कुदरत जलवा फशां हो तेरा ।
सारे जहान पर फिर सिक्का रवां हो तेरा ॥
यह आस मेरे दिल की पूरी हो प्यारी अम्मां ।
अब बख़्श दे ख़तायें तू मेरी सारी अम्मां ॥
बेकस "फ़लक" की सुनले तू आहोज़ारी अम्मां ।
मक़बूल हो मरी फिर ख़िदमत गुज़ारी अम्मां ॥
चरणों में नम्रता से मैं सीस हूं निवाता ।
अपनी गिरावटों पर नादम बहुत हूं माता ॥

मनोरञ्जन।

भोः श्राद्धपक्ष ! सकल द्विज कल्पवृक्ष ! ।
काऽस्मान्विहाय गतवानसि यच्छ वाचम् ।
डिण्डीरपिण्डपरिपाण्डुरपायसाानि ।
को दास्यति त्वयि गते घृतलड्डुकानि ? ॥१९५॥

हे पितृ पक्ष ! (कनागत) हे ब्राह्मणों के कल्प वृक्ष ! बतलाइये, हमें छोड़ आप कहां चले ! हाय हाय ! आप के चले जाने से कौन हमें घी से तर स्वच्छ और सफेद खीर और लड्डू खिलावेगा ?

गये कनागत फूले कांस। ब्राह्मण रोवे चूल्हे पास।
श्राद्ध गये आये नौराते। ब्राह्मण बैठे चुप चपाते॥

अधः पश्यसि किं वृद्धे! पतितं तव किं भुवि।
रे रे मूढ न जानासि गतं तारुण्य मौक्तिकम् १९६॥

हे वृद्धे ! कमर झुकाकर तू नीचे क्या देख रहा है ? क्या भूमि पर कुछ गिर पड़ा है ? इस प्रश्न के उत्तर में वुढ़िया कहती है, रे मूर्ख क्या तू नहीं जानता कि मेरा यौवन रूपी मोती गिर पड़ा है उस की तलाश कर रही हूं॥

چرا خم کرده می گشتند پیران جهان "صائب"
مگر در خاک می جوئیند ایام جوانی را-

चरा खम कर्दा मीगशतन्द पीराने जहाँ "सायब"।
मगर दर खाक मी जोयन्द अय्यामे जवानी रा॥

ऐ सायब! संसार के बूढ़े मनुष्य नीची कमर करके क्यों चलते हैं? कवि ने स्वयं इस का उत्तर दिया है कि:— यह लोग जवानी के समय को खाक में तलाश कर रहे हैं।

"रज़ो" शवाब जो खोया है पीरी में।
हम उस को ढूंढते फिरते हैं सिर झुकाए हुए॥

भर्ता मे महिषासुरः कृतयुगे देव्या भवान्याहत-
स्तस्मात्तद्दिनतो भवामि विधवा वैधव्य धर्मा ह्यहम्।
दंता मे गलिताः कुचा विगलिता भग्नं विषाणद्वयं
वृद्धायां मयिगर्भसम्भवविधिं पृच्छन्नकिंलज्जसे१९७

किसी पण्डित पर प्रसन्न होकर एक राजा ने उसको भैंस इनाम देने की आज्ञा दी। नौकरों ने बूढ़ी भैंस पण्डित को देदी। पण्डित उस भैंस को लेकर राजा के सामने से गुज़रा, और अपना मुख भैंस के कान से लगा दिया। राजा ने पूछा पण्डित जी भैंस क्या कहती है पण्डित जी ने उत्तर उपरोक्त श्लोक पढ़ा:—

मेरे पति महिषासुर को सत्युग में देवी ने मार डाला था, मैं उस दिन से विधवा होकर विधवा धर्म का पालन कर रही हूं। मैंने कभी व्यभिचार नहीं किया, अब मेरे दांत गिर पड़े

और स्तन शिथिल हो गये हैं, और दोनों सींग टूट चुके हैं। इस प्रकार मैं वृद्धा हो गई हूं। ऐसी अवस्था में मुझे देख कर "तू गर्भवती" है, ऐसे प्रश्न करते हुए तुझे लज्जा क्यों नहीं आती।

राजा यह सुन कर बहुत खुश हुआ और बूढ़ी के स्थान में जवान भैंस पण्डित को दलाई गई।

कवि लाल के साथ भी ऐसा ही हुआ था :—

तिमिर लंग लई मोल चली बाबर के हलके।
भये हुमायुं शाह गई तिन के संग बल के॥
अकबर करी अजात जहांगीर भात खवायो।
शाहजहां समरत्थ पीठ को भार छुंडायो॥
नन्दन बन विरहत रही भागी फिरैं सियार डर।
परिवार वार उद्धारकर अब आई कवि'लाल'घर॥

मद्य-पान।

चित्ते भ्रान्तिर्जायते मद्यपानात्,
भ्रान्ते चित्ते पापचर्यामुपैति।
पापं कृत्वा दुर्गतिं यान्ति मूढा-
स्तस्मान्मद्यं नैव पेयं न पेयम् ॥१९८॥

मदिरापान करने से चित्त में भ्रान्ति होती है, चित्त के भ्रान्त होने पर मनुष्य पापाचरण को करता है। और पाप

करके मूर्ख मनुष्य दुर्गति को प्राप्त होते हैं, इस लिए शराब नहीं पीना चाहिये, नहीं पीना चाहिये।

औगन कहौं सराब का, ज्ञान वन्त सुनी लेय।
मानस से पसुआ करे, द्रव्य गाँठि का देय॥
अमल अहारी आत्मा, कबहूं न पावै पारि।
कहे कबीर पुकारि के, त्यागो ताहि विचारि॥

आम फरत है पत लिये, महु फरत पत खोय।
ऐसे पतित के रस पिये, कौन पतित नहिं होय॥

आम को जिस सम फल लगने लगता है, तो साथ ही नवीन पत्ते और कोंपलें भी निकल पड़ती हैं। परन्तु महुए को जब फल आता है, तो उस की पत झड़ हो जाती है। पत यहां द्व्यर्थक है:—"पत्ते" और "प्रतिष्ठा"। शराब चुंकि महुए की भी बनाई जाती है। अतएव कवि ने इससे यह उपदेश दिया है, कि ऐसे पतित अर्थात् जिसके पत नहीं हैं, उस का रस पीने से कौन पतित नहीं होगा। कवि की प्रतिभा का यह विलक्षण चमत्कार है। क्या उत्तम विधि से शराब का निषेध किया है।

उर्दू कविता में शराब को "दुख़्तेरज़" (अँगूर की पुत्री) के नाम से सम्बोधन किया जाता है। इसी बात को लक्ष में रख कर प्रसिद्ध कवि "अकबर" ने व्यंगोक्ति द्वारा शराब की इस प्रकार निन्दा की है:—

उस की बेटी ने उठा रक्खी है दुनिया सिर पर।
ख़ैरियत गुज़री कि अंगूर के बेटा न हुआ॥

ऐ "ज़ौक़" देख दुख़्तरेरज़ को न मुंह लगा।
छुटती नहीं यह काफ़िर मुंह से लगी हुई॥

मै ख़्वार का है पाओं जहन्नम की राह में।
माँ और जोरू एक हैं उस की निगाह में॥

Wine in and wit out.

मद्य के भीतर प्रवेश करते ही बुद्धि बाहर हो जाती है।

मै उन्होंने पी अब उन के पास क्योंकर दिल लगे॥
जानवर इक रह गया इन्सान रुख़सत हो गया॥
(अकबर)

ग़रूरो-मै परस्ती-ख़ूएबद-रंज।
यह इन्सां के लिये है चार दोज़ख़॥ (अख़्तर सुलतान आलम)

मै है इक आग न तन इस में जलाना हरगिज़।
मै है इक नाग क़रीब इस के न जाना हरगिज़॥
मै है इक दाम न दिल इस में फंसाना हरगिज़।
मै है इक ज़हर न इस ज़हर को खाना हरगिज़॥
भूल कर भी उसे तुम मुंह न लगाना हरगिज़।
भूत की तरह यह जिस सिर पर चढ़ा करती है॥
हदफ़ तीरे बला उस को किया करती है।
ख़िरमने होशो ख़िरद को यह फ़ना करती है॥
क्या बताऊं तुम्हें अहबाब यह क्या करती है।
कि ब्यां होगा न मुझ से यह फ़साना हरगिज़॥

काक कोकिल-भेद ।

काकःकृष्णःपिकःकृष्णःकोकोभेदःपिककाकयोः।
वसन्तसमये प्राप्ते काकः काकःपिकःपिकः १९९॥

कोयल कव्वे में क्या भेद है क्योंकि काग भी काला है कोयल भी काली है पर वसंत समय आने पर जब वह बोलते हैं तो शब्द से मालूम हो जाता है कि यह काग हैं और यह कोयल हैं।

कोयल ! तुअ अरु काग में कुछ न वरन को भेद।
द्विज दोनों द्वै पक्षयुत फिरहु सुतन्त्र अखेद॥
फिरहु सुतन्त्र अखेद सरसफल के दोउ भक्षक।
अहै एक जगदीश सदा दोउन के रक्षक॥
"जनसीदन" पिक लेत मोहि मन क्यों दुनियाको।
कारन कुछ न विशेष ! भेद इक वचन क्रिया को॥

(जनार्दन झा

पात्र कुपात्र ।

पात्रापात्रविवेकोऽस्ति धेनु पन्नगयोर्यथा ।
तृणात्संजायते क्षीरं क्षीरात्संजायते विषम् २०

पात्र और अपात्र का ज्ञान गऊ और सर्प से होता है जैसे गाय को तृण देने से दूध और सर्प को दूध देने से ज़हर पैदा होता है।

क्षीर होत तृण खाय कै पय से विष ह्वै जाय।
याहि विधि धेनु भुजंग रद पात्र कुपात्र लखाय॥
(दीनदयाल गिरि)

विद्वानों का श्रम।

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।
नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्॥

विद्वज्जन के परिश्रम को विद्वान ही जानते हैं वंध्या स्त्री प्रसव काल के कष्ट को क्या जाने।

पंडित जन को श्रम मरम जानत जे मति धीर।
कबहूं बांझ न जानई तन प्रसूत की पीर॥ (वृन्द)

जाके उर उपजी नहिं भाई सो क्या जाने पीर पराई।
ब्यावर जाने पीर की सार बांझ नर क्या लखै विकार॥
(दरया साहिब)

पर कुल घालक लाज न भीरा।
बांझ क्या जाने प्रसव की पीड़ा॥ (तुलसीदास)

जा के पैर न गई बवाई। वह क्या जाने पीड़ पराई॥

वृद्ध-प्रतिष्ठा।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा,
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मो न वै यत्र नास्ति सत्यं,
सत्यं न तद्यच्छलनानु बद्धम् ॥२०२॥

वह सभा नहीं जिस में वृद्ध जन न हों, वह वृद्ध नहीं हैं जो धर्म को न कहें वह धर्म नहीं है जिस में सत्य न हो और वह सत्य नहीं जो छल से युक्त हो।

शोभित सो न सभा जहँ वृद्ध न, वृद्ध न ते जो पढ़े कुछ नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधु न साधित, दीह दया न दिखै तिन माहीं॥
सो न दया जनु धर्म धरै धर धर्म्म न सो जहं दान वृथा ही।
दान न सो जहं साँच न "केशव", सांच न सो जो वसै छलछांही॥

गुणवानों की अवहेलना।

छेदश्चन्दन चूत चम्पकवने रक्षाऽपि शाखोटके,
हिंसा हंस मयूर कोकिल कुले काकेषु नित्यादरः।
मातङ्गेन खरक्रयः समतुला कर्पूर कार्पासयोः,
एषा यत्र विचारणा गुणिगणे देशाय तस्मै नमः॥

जिस देश में चन्दन आंव और चम्पक वन में कुल्हाड़े से काट पीट की जाती है, और शाखोटक अर्थात तुच्छ वृक्षों की रक्षा की जाती है, हंस मोर और कोकिलों के समुदाय में हिंसा की जाती है, और कौवों का सदा आदर होता है, हाथियों को वेच कर गधे खरीदे जाते हैं, कपूर और कपास जहां एक समान हों, जिस देश वालों के ऐसे विचार हैं, उस को नमस्कार है, अर्थात् उस को छोड़ देना ही वेहतर है।

भले बुरे यहां एक से, तहां न वसिये जाय।
ज्यौं अन्यायपुर में विके, खर गुर ऐकै भाय॥ (वृन्द)

अरे हंस या नगर में, जैयो आप विचारी।
कागन सों जिन प्रीति कर, कोयल दई विडारी॥ (विहारी)

सेत सेत सब एक हैं, सभी कपूर कपास।
ऐसे देश कुदेश में कबहूं न कीजे वास॥

साईं घोड़े अछत हीं गदहन आयो राज।
कौआ लीजे हाथ में दूर कीजिये वाज॥
दूर कीजिये वाज राज पुनि ऐसो आयो।
सिंह कीजिये कैद सयार गजराज चढ़ायो॥
कहि गिरिधर कविराय जहां यह चूकि वड़ाई।
तहां न कीजै भोर सांझ उठि चलिये साईं॥

यहां साधुअसाधु सुजाति कुजाति को भेद न कोऊ विचार करैं।
द्विज श्याम जू ये अविवेकी अमी और हलाहल एकमें घोरि भरैं॥

तजैं पारस और गहैं पाथर धाय लखे इन के मुख पाय परैं।
तजियो यहि देश को यासों मराल भले न इतै पग भूलि धरैं॥

(श्यामनाथ शर्मा)

सेहुंड बबूर को लगावे जो जतन करि,
काटत चमेली चम्पा चन्दन जुहिन को॥
हिंसा करि हंस और कोकिल कलापिन की।
आदर समेत पाले वायस मलिन को॥
गधे गजराज को समान मान होत जहां।
एक से कपूर और कपास लगैं जिन को॥
हमें कमला कर न देश दिखलावै वह।
दूर से हमारे है प्रणाम कोटि तिन को॥

هماے گو مفگن سایۂ شرف ہرگز
دراں دیار کہ طوطی کم از زغن باشد — (حافظ)

हुमाए गो मफ़गन सायाए शरफ़ हरगिज़।
दर आं दयार कि तूती कम अज़ ज़ग़न बाशद॥ (हाफ़िज़)

हुमा से कहदो कि ऐसे देश में जहां तूती कौवे से हीन समझी जाती है, अपनी शराफ़त का साया न डाले, अर्थात् वहां निवास न करे।

क़दर दानों की तबीअत का अजब रंग है आज।
बुलबुलों को यह हसरत कि वह उल्लू न हुए॥

(अकबर)

अग्निदाहे न मे दुःखं छेदेन निकषेण वा ।
यत्तदेव महद्दुःखं गुञ्जया सह तोलनम् ॥२०४॥

अग्नि में जलने, काटे जाने और न सान पर लगाने से मुझे दुःख है, दुःख है तो यह, कि लोग मुझे रत्तकों के साथ तोलते हैं ।

भले बुरे सों एक सी मूढनि के परतीति ।
गुञ्जा सम तोलत कनक तुला पला की रीति ॥ (वृन्द)

آه آه از دست صرافان گوهر ناشناس ،
هر زمان خرمهره را با در برابر میکنند - (حافظ)

आह आह अज़ दस्ते सराफ़ाँ गौहर नाशनास ।
हर ज़मां ख़रमोहरा रा बा दुर बराबर में कुनन्द ॥(हाफ़िज़)

इन सराफ़ोंके हाथसे जो कि मोतीको नहीं पहचानते फ़रयाद है, जो कि हर घड़ी कौड़ीको मोतीके बराबर करते हैं ।

पराई दाख और गधा ।

यद्यपि का नो हानिः परकीयां चरति रासभो द्राक्षाम् । असमञ्जसमिति मत्वा संखिद्यते चेतः ॥२०५॥

पराई दाख को गधा चर रहा है, यद्यपि इसमें हमारी कोई हानि तो नहीं, परन्तु दाख गधे के योग्य नहीं हैं, यह विचार कर मन में क्षोभ उत्पन्न होता है ।

अजगुत लखि नर नीचको काहू को न सुहात ।
दाख बिरानी खात खर को न देखि अनखात ॥ (वृन्द)

सादी ने इसी भाव को दूसरे ढंग से वर्णन किया है—

اگر بینم که نا بینا و چاه است
وگر خاموش بنشینم گناه است - (سعدی)

अगर बीनम कि नाबीना ओ चाह अस्त ।
वगर ख़ामोश बिनशीनम गुनाह अस्त ॥ (सादी)

यदि मैं देखूं कि अन्धा और कुआं है; अर्थात् अन्धा मनुष्य कूपकी ओर जारहा है, फिर यदि मैं चुप बैठा रहूं तो पाप है।

कर्म-गति ।

रामो येन विडम्बितो मृदुमयश्चन्द्रः कलंकी कृतः
क्षारम्बु सरितां पतिश्च नहुषः सर्पः कपाली हरः ।
माण्डव्यो मुनि शलपीडिततनुर्भिक्षाभुजः पांडवाः
नीतो येन रसातलं बलिरसौ तस्मै नमः कर्मणे ॥

राम को जिसने वन वन फिराया, सुन्दर चन्द्रमा में कलङ्क लगाया, समुद्र को खारी किया, नहुष को सर्प बनाया, महादेव को कापालिक बनाया, माण्डव्य मुनि को शूली पर चढ़ाया, पांडवों से भीख मंगवाई और राजा बलि को जिसने पाताल पहुंचाया, उस कर्म को नमस्कार है ।

पिता जनक जग विदित प्रभाऊ ।
ससुर सुरेश सखा रघुराऊ ॥
रामचन्द्र पति सो वैदेही ।
सोवत महि विधि वाम न तेही ॥
सिय रघुवीर कि कानन जोगू ।
करम प्रधान सत्य कह लोगू ॥ (तु० रा०)

कर्म-गति टारे नाहीं टरी ।

मुनि वसिष्ठ से पण्डित ज्ञानी सोध के लगन धरी ।
सीता हरन मरन दशरथ को वन में विपत परी ॥
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि कहँ वह मृग चरी ।
सीता को हर ले गया रावण सुवरन लङ्क जरी ॥
नीच हाथ हरिचन्द्र विकाने वलि पाताल धरी ।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग गिरगट जोनि परी ॥
पांडव जिनके आप सारथी तिन पर विपत परी ।
दुर्योधन को गरव मिटायो यदुकुल नास करी ॥
राहु केतु और भानु चन्द्रमा विधि संजोग परी ।
कहत "कबीर" सुनो भाई साधो होनी होत खरी ॥
कर्म रेख पांडव वन आए । कर्म रेख रघुपत फल खाए ॥
कर्म रेख वामन वलि छलयो । कर्म रेख हरिचन्द जल भरयो ॥
एते लच्छन कर्म के कोटि करावें भेख ।
कहो "आलम" कैसे मिटे कठिन कर्म की रेख ॥

मन महाराज ।

मानसं प्राणिनामेव सर्व कर्मैक कारणम् ।
मनोनुरूपं वाक्यं च वाक्येन प्रस्फुटं मनः ॥२०७॥

नारद पञ्च रात्र १—७—१८

मन ही प्राणियों के सर्व कार्य्यों का एक कारण है। जैसा मन होता है, वैसा ही वाक्य निकलता है। और वाक्य से मन प्रकट होता है।

जिस बन्दे का पाक दिल सो बन्दा माकूल।
सुन्दर उसकी बन्दगी साहिब करे कबूल॥
मुख सेती बन्दा कहे दिल में अति गुमराह।
सुन्दर सो पावे नहीं साईं को दरगाह॥ (सुन्दर दास)

"तुलसी" काया खेत है, मनसा भयो कसान।
पाप पुण्य दोऊ बीज हैं, बोवे सो लुनै निदान॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कहे कबीर पिउ पाइये, मन ही की प्रतीत॥
मन मोटा मन पातरा, मन पानी मन लाय।
मन के जैसी ऊपजे, तैसी ही हो जाय॥ (कबीर)

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन हर सों मिले, तो हरि मिले नसंक॥

मन उबारे से उबरते हैं सभी।
कौन तारे से नहीं मन के तरा॥
मन सुधारे ही सुधरता है जगत।
मन उधारे ही उधरती है धरा॥ (हरि औध)

It is the mind that makes good or ill,
That make its wretch or happy rich or poor,
(Spencer.)

मन ही मनुष्य को अच्छा और बुरा,
धनवान और कंगाल बनाता है।

भ्रमन् सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः।
निर्मलो न मनो यावत् तावत् सर्वं निरर्थकम्॥२०८॥

(देवी भागवत)

समस्त तीर्थों में भ्रमण करना और बार बार स्नान करना, उस समय तक व्यर्थ है जब तक कि मन निर्मल न हो॥

दाढ़ी मूंड मुंडाय के हुआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहिं मूंडिये जा में भरया खोट॥
केसन कहा बगारिया जो मूण्डे सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूंडिये जा में विषय विकार॥
आसन मारे क्या भया मुई न मन की आस।
ज्यों तेली के बैल को घर हीं कोस पचास॥ (कबीर)

چو هر ساعت از تو بجائے رود دل ،
به تنهائی اندر صفائی نه بینی -
ورت مال و جاهست و زرع و تجارت ،
چو دل با خدایست خلوت نشینی - (سعدی)

चु हर साइत अज़ तो बजाए रवद दिल ।
ब तन्हाई अन्दर सफ़ाई न बीनी ॥
वरत मालो जाहस्तो ज़रओ तजारत ।
चु दिल बा ख़ुदायस्त ख़िलवत नशीनी ॥ (सादी)

जब प्रतिक्षण तुम्हारा मन तुम से दूर चला जाता है, तो एकान्त में भी तुम्हें शान्ति न मिलेगी । यदि तुम्हारा हृदय परमात्मा में लगा है, तो अपने पास रुपया पैसा, माल असबाब, भूमि और उच्च पद रखते हुए भी तुम एकान्त वासी हो ।

मन दिया कहीं और ही तन साधन के सङ्ग ।
कहे "कबीर" कोरी गजी कैसे लागे रङ्ग ॥

सदफ़े दिल से गौहर निकलते हैं मगर वे आबदार ।
जब कि दरयाए तबीअत मौज पर होती नहीं ॥

तालीम का शोर ऐसा तैहज़ीब का गुल इतना ।
बरकत जो नहीं होती निय्यत की ख़राबी है ॥ (अकबर)

दिलसे वह काफ़िर सनम निकले तो सब कुछ हो कबूल ।
जा के मसजिद में इबादत मैं करूं तो क्या करूं ॥(दाग़)

देरो काबे को गया बुत को किया है सिजदा ।
दिल तो काफ़िर है मुस्लमान रहे या न रहे ॥

तृष्णा ।

भोगो न भुक्ता वयमेव भुक्ता,
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्तः ।
कालो न यातो व्यमेव याता,
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥२०९॥

(भर्तृहरि)

विषय भोग मैं ना किये, विषयन भोगे मोहि ।
नाहीं तप कहं हम किये, तप हि तपायो जोहि ॥
समय न बीतो पै बिती, वयस अवस्था मोर ।
हम हीं भये पुरान अब, तृष्णा ना तन तोर ॥

माया मरी न मन मरे मर मर गए शरीर ।
आशा तृष्णा ना मरी कह गये दास "कबीर"॥

बेकार हुए हवास पर मैहसूसात ।
दिल से जाते नहीं हमारे हैहात ॥
बुड्ढे हुए हम मगर न बुड्ढी हुई हिरस ।
इस का है वही हाल वही पहिली बात ॥ (मेहर)

स्याही मू की गई दिल की आरज़ू न गई ।
हमारे जामए कुहन से मै की बू न गई ॥ (बहादुर)

संकीर्ण प्रकरणम् ।

न कश्चदपि जानाति किं कस्य श्वो भविष्यति ।
अतः श्वः करणीयानि कुर्यादद्यैव बुद्धिमान् ॥

यह कोइ भी नही जानता कि किस को कल क्या होगा, इस लिए बुद्धिमान मनुष्य कल करने वाले काम को आज ही कर लेवे ॥

न श्वः श्व इत्युपासीत कोहि मनुष्यस्य श्वोवेद ॥

श० ब्रा० २ । १ । ३ । ६ ॥

कल करूंगा कल किया जाएगा ऐसा न कहो कौन भला मनुष्य के कल की बात जानता है ॥

काल्ह करे सो आज कर आज करै सो अब्ब ।
पल में परलय होयगी बहुरि करैगा कब्ब ॥ (कबीर)

بعزر آوری خواهش امروز کن ،
که فردا نماند مجال سخن – (سعدی)

बउज़र आवरी ख़्वाहिश इमरोज़ कुन ।
कि फर्दा नमानद मजाले सखुन ॥ (सादी)

क्षमा प्रार्थना की इच्छा आज ही करनी उचित है क्योंकि कल तो बात करने की भी शक्ति न रहेगी ॥

ساقیا عشرت امروز بفردا مفگن ،
یار دیوان قضا خط امانی بمن آر – (حافظ)

साक़िया इशरते इमरोज़ बफ़र्दा मफ़गन।

याज़ दीवाने क़ज़ा ख़त्ते अमानी बमन आर॥ (हाफ़िज़)

ऐ साक़ी! आज का आनन्द कल पर मत छोड़ (यदि ऐसा करना है) तो मृत्यु के दरबार से मेरे जीवित रहने की लिखित आज्ञा ला॥

जो करना है करले कि नहीं दमका भरोसा।

समझा है जिसे उमर वह चिराग़े सहरी है॥ (मेहर)

आज का काम छोड़ मत कल पर।

ज़िंदगी का एतबार नहीं॥ (बेताब)

तेरे वाइदे पर सितमगर अभी और सबर करते।

हमें अपनी ज़िंदगी का गर एतबार होता॥ (दाग़)

Are you in earnest? Seize this very minute,

What you do, or think you can being it.

(Faust).

यदि तुमने किसी काम के करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, तो उसके लिये इसी क्षण को पकड़ लो। यदि तुम समझो कि किसी काम को कर सकोगे या कर सकते हो तो उसे आरम्भ करदो॥

नासौ जयी जितायेन न क्रव्यालमृगाधिपाः।

जितं ते नैव ये नेह दान्तो मारस्त्रिलोक जित्॥

जिसने घड़याल सर्प अथवा शेर पर विजय पाली है वह वास्तव में विजयी नहीं है, सच्चा विजयी वह है जिसने तीनों लोकों की जीतन वाले कामदेवको अपने वशमें कर लियाहै॥

निहंगो अज़दहाओ शेरे नर मारा तो क्या मारा।
बड़े मूज़ी को मारा नफ़स अम्मारा को गर मारा॥ (ज़ौक़)

संपदो महतामेव महतामेव चापदः।
वर्धते क्षीयते चन्द्रो न तु तारागणः क्वचित्॥

सम्पति महात्माओं को ही होती है और विपत्ति भी महात्माओं को प्राप्त होती है, जैसे चन्द्रमा कलाओं से बढ़ता और घटता है, परन्तु तारागण कभी घटते और बढ़ते नहीं॥

बिपति बड़ेई सह सकैं इतर बिपति तैं दूर।
तारे न्यारे रहत हैं, गहै राहु शशि सूर॥ (वृन्द)

असंभवं हेम मृगस्य जन्म,
तथापि रामो लुलभो मृगाय।
प्रायः समापन्नं विपत्ति काले,
धियोऽपि पुंसां मलिनो भवन्ति॥२१४॥

(हितोपदेश)

सोने के मृग की उत्पत्ति असम्भव है, तो भी श्रीरामचन्द्र जी मृग में लुभा गये, बहुधा विपद् समय के आने पर पुरुषों की बुद्धि मलीन हो जाती है।

मति फिर जाय विपति में राव रंक इक रीत।
हेम हिरन पाछे गये राम गंवाई सीत ॥ (वृन्द)

कोटंच बूटंच पतलून दिव्यं,
चुटामुखे चञ्चलमद्धतीयम् ।
लेडी गुलामं शुभ कर्म हीनं,
वावूभ्याम मदमांसं सलीलम् ॥२१५॥

कोट पतलून आदि स्वच्छ वस्त्रधारी सिगरेट को मुख में डाल कर इधर उधर फैराने वाले, स्त्री के दास, शुभ कर्मों से हीन, सदा मदिरा तथा मांस के भक्षण में ही लगे रहते हैं ॥

खाय के पान बिडोरत होठ, है वेदि सभा में वने अलवेला।
धोती किनारी की सारी सी ओढत, पेट वढाय कियो जस थेला ॥
"वंशगोपाल" वखानि कहे सुनो, भूप कहाय वने फिरी छेला।
स्नान करे बड़ी साहिबी की, और दान में देत न एक अधेला ॥

Suited booted stick in the hand,
These are the sign of a Gentleman.

सूट बूट पहिने हो और हाथ में छडी हो केवल यही चिन्ह एक भद्र पुरुष के रह गये हैं ॥

आयासः परहिंसा वैतसिक सारमेय ! तव सारः।
त्वामपसार्य विभाज्यः कुरंग एषोऽधुनैवान्यैः ॥

(आर्या सप्तशती)

ओ शिकारी कुत्ते ! इस शिकार में परिश्रम और पराई हिंसा यही तेरे हिस्से में है। इस हरिण को जिसे तू मार रहा है, अभी तुझे दूर हटा कर और लोग बांट लेंगे फिर तू व्यर्थ क्यों दूसरे को मार कर पाप का भागी बनता है।

स्वार्थ सुकृत न श्रम वृथा, देख विहंग विचार।
बाज ! पराये पानिपर तू पंछी हि न मार ॥ (बिहारी)

तोड़ कर फल को कतरता क्यों रहा।
खा नहीं सकता उसे जब आप तू ॥
मत पराये के लिये बे पीर बन।
हाथ पापी लौं करे क्यों आप तू ॥ (हरिऔध)

हस्ती स्थूलतरः स चाङ्कुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो, दीपे प्रज्वालिते प्रणश्यति तमः किं दीप मात्रं तमः। वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्र मात्रो गिरिः, तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥२१७॥

(पञ्च तन्त्र)

हाथी महास्थूल है, वह अङ्कुश के वश में है, क्या अङ्कुश हाथी के समान है। दीपक के जलने से अन्धकार नाश होता है, क्या दीपक अन्धकार के समान है। बिजली से सैंकड़ों

पर्वत गिर जाते हैं क्या बिजली पर्वत के समान है। वस्तुत: जिस में तेज है, वही बलवान् है, मोटे शरीर वालों का क्या विश्वास है ॥

जाहि पराक्रम से बड़ो, लघु दीर्घ न निहार।
अङ्कुस दीपक कुलिस कित, कित गज तिमिर पहार॥
(दीनदयालगिरि)

सबल न पुष्ट शरीर को, सबल तेज युत होय।
लष्ट पुष्ट गज दुष्ट ज्यों, अङ्कुश के वश होय॥ (वृन्द)

اے کہ شخص منت حقیر نمود ،
تادرشتی هنر نه پنداری -
اسپ لاغر میاں بکار آئید ،
روز میداں نه گاؤ پرواری - (سعدی)

ऐ कि शख़्स मनत हक़ीर नमूद।
ता दुरश्ती हुनर न पिन्दारी ॥
अस्पे लाग़र म्याँ बकार आयद।
रोज़े मैदाँ न गाओ परवारी ॥ (सादी)

हे महानुभाव तुझे मेरा शरीर तुच्छ ज्ञात होता था, डीलडौल और मोटे पन को गुण न समझिए।

दुबला पतला घोड़ा युद्ध के दिन काम आता है। मुटाया हुआ बैल काम नहीं आता॥

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनन्दी,
गुणो दर्कान् दारा नतुपरिचरामःसविनयम् ।

पिवामः शास्त्रौधान द्रुत विविध काव्यामृतरसान्,
न विद्मः किं कुर्मः कतिपय निमेषायुषि जने ॥२१८

(भर्तृहरि)

रहैं निकट में गङ्ग के, की विचरै सङ्ग नार।
अथवा शास्त्र पियूष रस, पान करैं सुख सार॥
नास मान जो देह यह, निस दिन लखि २ तात।
संसय यह की का करैं, नेकु न मोहि जनात॥

फ़िकरे मआश, इश्के बुतां, यादे किरदगार।
थोड़ी सी उमर में कोई, क्या क्या किया करे॥

इश्के बुतां के सदमे, हूरों की आरजूएं।
दोनों जहाँ के झगड़े, इस एक जान पर हैं॥ (जादू)

यदा सीदज्ञानं स्मरतिमिर संस्कार जनितं,
तदादृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि।
इदानीमस्माकं पटुतर विवेकांजनजुषां,
समाभूता दृष्टि स्त्रिभुवनमपि ब्रह्मतनुते ॥२१९॥

(भर्तृहरि)

जब लों मम हिय में रह्यो कामदेव अन्धकार,
तबलों या संसार में लख्यों स्त्र हूं दिस नार।

अब विवेक अञ्जन लग्यो दृष्टि दोष भय दूर,
ताते तीनों लोक में ब्रह्म लखत भर पूर ॥
वह दिन गये कि "दाग़" थी हरदम बुतों की याद ।
पढ़ते हैं पाञ्च वक्त की अब तो नमाज़ हम ॥

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसार विच्छित्तये,
स्वर्गद्वार कपाट पाटन पटुधर्मोऽपि नोपार्जितः ।
नारी पीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि ना लिंगितं,
मातु केवलमेव यौवनवनच्छेद कुठारा वयम्॥२२०॥

(भर्तृहरि)

विधि सों पूजे नाहिं, पाय प्रभु के सुखकारी ।
प्रभु को धरो न ध्यान, सकल भव दुख को हारी ॥
खोले स्वर्ग कपाट, धर्महू कर्‌यो न ऐसो ।
कामिन कुच के सङ्ग, रङ्ग भर रह्यो न तैसो ॥
हरि हाय हाय कीन्हौ कहा, पाय पदारथ नर जनम ।
जननी यौवन वन दहन कों, अग्नि रूप प्रगट भे हम ॥

कबहू नहि साधी समाधि की रीति,
न ब्रह्म की जीव में ज्योति जगी ।
कबहु परजङ्क में अङ्क न लीनी,
मयङ्कमुखी रस प्रेम पगी ॥

कवि ईश्वर प्यारी की बातनहू,
कबहू नहि चित्त की चाह भगी ।
यह आयु गई सब हाय वृथा ।
गल सेली लगी न नवेली लगी ॥ (ईश्वरीसिंह)
हैफ़ कि उमर अपनी मुफ़्त सर्फ़ हुई ।
न कुछ खुदा को इबादत की न बुतों की चाह ॥

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः॥२२१॥

(भगवद्गीता ७—३)

हज़ारों मनुष्यों में कोई एक सिद्धि के लिए यत्न करता है। यत्न करने वाले सिद्धों में भी कोई एक मुझ को ठीक ठीक समझता है।

ज्ञानवन्त कोटिक महँ कोऊ। जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन्ह सहस्त्र महँ अब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन विज्ञानी॥

(तुलसी दास)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमऽधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृतम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥२२१॥

(भगवद्गीता अ० ४ श्लोक ७—८

हे भरत कुलोत्पन्न ! जब जब भी धर्म की हानि होती है और अधर्म की उन्नति होती है अर्थात् जब अधर्म बढ़ जाता है, तब मैं आप को उत्पन्न करता हूं। मैं साधुओं की रक्षा के लिए और कुकर्मियों का नाश करने के लिए, धर्म को अच्छे प्रकार स्थापन करने के लिये युग युग में होता हूं ॥

जब जब होइ धरम कै ग्लानी। बाढ़हिँ असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिधि सरीरा। हरिहँ कृपा निधि सज्जन पीरा ॥
(तुलसी दास)

महर्षि स्वामी दयानन्दजी महाराज के आगमन का वर्णन करते हुए पण्डित नारायण प्रसादजी "वेताब" ने कहा है:—

जो फ़रमाया है गीता में यहां इज़हार होता है।
कि गलानी धर्म को होतो है जब अवतार होता है।
गुनाहों का ज़माना पापमय संसार होता है।
तो ठोकर से महापुरुषों की बेड़ा पार होता है ॥
अयां उस वक्त कोई हस्तीए पुर नूर होती है।
तो पापों की सियाही नूर से काफ़ूर होती है ॥

मूर्खो द्विजातिः स्थविरो गृहस्थः,
कामी दरिद्रो धनवान् तपस्वी ।
वेश्या कुरूपा नृपतिः कदर्यः,
लोके षडेतानि विडम्बितानि ॥२२२॥

मूर्ख ब्राह्मण, बूढ़ा गृहस्थ, दरिद्री कामी, धनवान् तपस्वी, कुरूपा वेश्या और स्वेच्छाचारी राजा, यह ६ अपनी पज़ीहत और लोकानन्दा कराने वाले होते हैं ।

मूढ तपी सम कृति, दुष्ट मानो गृहस्थ नर ।
नरनायक आलसी, विपुल धनवंत कृपण कर ॥
धर्मी दुष्ट स्वभाव, वेदपाठी अधरम रत ।
पराधीन सुचवन्त, भूमिपालक निदेह सत ॥
रोगी दरिद्र पीडित पुरुष, वृद्ध नारिरस गृद्धचित ।
एते विडंब संसार में, इन सब को धिक्कार नित ॥

आबद्ध कृत्रिम सटा विकराल वक्त्रः,
प्राप्तो हठान्मृगपतेः पदवीं यदिश्वा ।
मत्ते कुम्भ तट पाटन लम्पटस्य,
नादं करिष्यति हरिणाधिपस्य ॥२२३॥

भले ही कोई बनावटी अयाल लगा कर कुत्ते को सिंह बना ले, परन्तु मतवाले हाथियों के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने वाले सिंह की गर्जना कैसे करेगा, मुंह से शब्द करते ही उस का असली रूप प्रगट हो जाएगा ।

भेष बनावे सूर को, कायर सूर न होय ।
खाल उढ़ावै सिंह की, स्यार सिंह नहीं होय ॥ (वृन्द)

यत्र शाब्दिकास्तत्र तार्किका यत्र तार्किकास्तत्र शाब्दिकाः । यत्र नोभयोस्तत्र चोभयो यत्र चोभ्योस्तत्र नोभयोः ॥२२४॥

जहां व्याकरण के ज्ञाता हों वहां नैयायक, जहां नैयायक हों वहां वैयाकरणी, जहां दोनों में से कोई न हो वहां दोनों के ज्ञाता बन बैठना, और जहां दोनों उपस्थित हों वहां कुछ भी न बनना (यह पाखण्डियों का काम है)।

है मर्द सखुन साज़ भी दुनिया में अजब चीज़।
पाओगे किसी फ़न में कहीं बन्द न उस को॥
मौजूद सखुन गो हों जहाँ वाँ हैं तबीब आप।
और जाते हैं बन आप तबीबों में सखुन गो॥
दोनों में से कोई न हो तो आप हैं सब कुछ।
पर-हेच हैं जिस वक्त कि मौजूद हों दोनों॥ (हाली)

तावदाश्रीयते लक्ष्म्या तावदस्य स्थिरं यशः । पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते ॥२२५॥

(भारवि)

जब तक मनुष्य का अपमान नहीं हुआ–जब तक संसार में उसका मान बना हुआ है–तभी तक लक्ष्मी उसका आश्रय करती है; तभी तक उसके पास रहती है; तभी तक उसका

यश भी स्थिर रहता है,और तभी तक लोग उस को पुरुषत्व-पद का अधिकारी भी समझते हैं। यहां मान गया तहां लक्ष्मी भी चलदेती है; यश भी जाता रहता है यहां तक कि लोग मान हीन को पुरुष ही नहीं समझते ॥

गई भूमि फिर मिले, वेलि फिर जमे जरे ते।
फल फूलनतें फले, फूल फूलंत झरे ते ॥
"केशव" विद्या निकट, बिकट बिसरी फिर आवे।
वहुरि होय धन धर्म, गइ संपत फिर पावे ॥
होइ जो शील सुशील मति, जगत् हेतु इम गाइये।
प्रान गयो फिर मिलत पै, पत न गई फिर पाइये ॥

फिर जोड़े जुड़ती नहीं, भई प्रतिष्ठा भंग।
फटे दूध के छीछड़े, बने न पय के अंग ॥
जाय भले ही माल धन, ईज्ज़त लेहु बचाय।
बहुर हांथ नहिं आवहही, जो कपूर उड़ जाय ॥
"रहिमन" पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे, मोती मानस चून ॥

अमी पियावत मान विनु रहीम हमें न सुहाय।
प्रेम सहित मरिबो भलो, जो विष देई बुलाय ॥
रहिमन रहिला की भली, जो परसै चितुलाय।
परसत मन मैला करै, सो मैदा जरि जाय ॥

اکر حنظل خوری ار دست خوش خوئے ،
به ار شیرینی ار دست ترش روے - (سعدی

अगर हन्ज़िल खुरी अज़ दस्ते खुश खूए ।
बेह अज़ शीरीनी अज़ दस्ते तुरूश रूए ॥

मीठा बोलने वाले के हाथसे ज़हर खाना, कटुभाषीके हाथ से मिष्टान्न खाने की अपेक्षा अच्छा है ।

मै उल्फ़त है पीलीजे यह कहकर अपने मुंहसे तुम ।
हक़ीक़त में मुझे चाहे हलाहल हो पिला देना ॥ (मुज़तिर)

है नाने खुशक तर जो मिले आबरू के साथ ।
बे आबरू अगर हो तो वह तर भी खुशक है ॥ (ज़फ़र)

तू मुझे तिरस्कारमय अमृत न पिला, बल्कि मानयुक्त इन्द्रायण का प्याला पिला । तिरस्कारमय अमृत नरक है और मानयुक्त नरक सर्वश्रेष्ठ स्थान है । (एक अरबी कवि)

गणयति गगने गणकश्चन्द्रेण समागमं विशाखायाः । विविधभुजङ्गक्रीडासक्तां गृहिणीं न जानाति ॥२२६॥

تو بر اوج فلک چہ دانی چیست ؛
چوں ندانی کہ درسرائے تو کیست ۔ (سعدی)

तो बर औजे फ़लक चे दानी चीस्त ।
चूं न दानी कि दर सराये तो कीस्त ॥ (सादी)

तू क्या जाने कि आकाश में क्या है, जब यह ही नहीं जानता कि तेरे घर में कौन है ।

साहित्यसंगीतकलाविहीनः,
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमान-
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥२२७॥

(भर्तृहरि)

गीत कला साहित्य हूं, नहीं सीख्यो नर जौन।
सींग पूंछ बिन पशू पर, तृण नहिं खाते तौन॥

The man who knows no music is not to be trusted a man (Shakespear).

जो मनुष्य राग-विद्या को नहीं जानता, वह निश्चित रूप से मनुष्य नहीं कहा जा सकता।

नहीं कटेगी वह वृक्ष जौलों । देगी न रम्भा फल मिष्ट तौलों ॥
भूलो न माली ! य किंवदन्ती । त्रासं विना नैव गुणाः श्रयन्ति ॥
(मैथिलीशरण गुप्त)

दुख पाये विनहु कहुं गुन पावत है कोय ।
सहे वेध बन्धन सुमन तब गुन संयुत होय ॥

مقام عیش میسر نمے شود بے رنج ،
براحتے نرسید آنکہ زحمتے نکشید - (حافظ)

मक़ामे ऐश मुयस्सर नमेशवद बे रंज ।
बराहते नरसीद आंकि ज़हमते नकशीद ॥ (हाफ़िज़)

सुख का स्थान विना दुःख के प्राप्त नहीं होता । जिसने दुःख नहीं उठाया वह सुख नहीं पा सकता ।

नामी कोई बग़ैर मुशक़्क़त नहीं हुआ ।
सौ बार जब अक़ीक़ कटा तब नगी हुआ ॥
हो न ख़ारों की ख़लश तब तक नहीं मिलता है गुल ।
गुलशने आलिम में बे रंजो अलम राहत नहीं ॥
(रफ़ीक़)

"तुलसी" निज कीरति चहहिं पर कीरतिको खोय ।
तिन्हके मुंह मसि लागि है, मिटहि न मरि हैं धोय ॥

But that riches from me my good name,
Rabs me of that, wich not enriches him,
and makes me poor inded. (Shakespear).

जो कोई मेरी प्रसिद्धि (सुख्याति) को छीनता है, वह मुझे तो निर्धन बना देता है, किन्तु वह उससे अपने को धनी नहीं बना सकता।

आंसुओ ! और को दिखा नीचा, लोग पूजे कभी न जाते थे।
क्यों गंवाते न तुम भ्रम उनका, जो तुम्हें आंख से गिराते थे॥

पानी मिले न आप को औरन बखशत नीर।
आपन मन निश्चल नहीं, और बंधावत धीर॥ (कबीर)

او خویشتن گم است کرا رهبری کند - (سعدی)

आ ख़्वेशतन गुम अस्त किरा रहबरी कुनद। (सादी)

जो स्वयं भूला हुआ है, वह दूसरे को रास्ता कैसे दिखला सकता है।

करै बुराई सुख चहै, कैसे पावे कोय।
रोपै पेड़ बबूल के, आम कहां ते होय॥ (वृन्द)

همیلت بسلدست اگر بشلوی ،
اگر خار کارے سمن ندروی -
اگر بد کلی چشم نیکی مدار ،
کہ ہر گز نیارد گز انگور بار -
رطب ناورد چوب خر زهرہ بار ،
چہ تخم افکلی بر همان چشم در- (سعدی)

हमीनत बसन्दस्त अगर विशनवी।
अगर ख़ार कारे समन नदरवी॥

अगर बद् कुनी चश्म नेकी मदार।
कि हरगिज़ नियारद गज़ अंगूर बार॥
रतब नावरद चोब ख़र ज़ोहरा बार।
चे तुख़म अफ़गनी बरहमाँ चश्मदार॥ (सादी)

यदि तू सुने तो तेरे लिए यह काफ़ी है, कि यदि तू कांटे बोयेगा, तो चमेली नहीं काट सकता। यदि तू बुराई करता है, तो भलाई की आशा मत रख, क्योंकि झाऊ को अंगूर कदापि नहीं लग सकते। कनेर के वृक्षको खजूरका फल नहीं लगता। तू जैसे बीज बोता है, उसी के अनुसार आशा रख।

As you saw, so you shall reap.
जैसा बीजोगे वैसा काटोगे।

نه هرگز شنیدیم در عمر خویش ،
که بد مرد را نیکی آمد به پیش ، (سعدی)

न हरगिज़ शुनीदेम दर उमरे ख़्वेश।
कि बद मर्द रा नेकी आमद ब पेश॥ (सादी)

मैंने आयु भर में यह नहीं सुना है, कि दुर्जन के सामने भलाई आई हो।

होय बुराई ते बुरा यह कीनो निरधार।
खाड खनै जो और को ताको कूप तयार॥ (वृन्द)

تو مارا همی چاہ کندی براہ
بسر لاجرم درفتادی بچاہ - (سعدی)

तो मारा हमी चाह कुन्दी बराह।
बसर लाजरम दर फ़तादी बचाह॥ (सादी)

तूने हमारे लिए रास्तेमें कुआं खोदा, परन्तु विवश होकर तू ही कुएं में गिरा।

ओछे नर के पेट में रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में कैसे सेर समात॥ (वृन्द)
जो पेट के हलके हैं पचे बात कब उन को।
रोकें तो उफर जाये शिकम और ज़ियादा॥ (ज़ौक)

मन में राखौं मन जरै, कहौं तो मुख जरि जाय।
"अहमद" बातन बिरह की, कठिन परी दहुं भाय॥
مرا دردیست اندر دل اگر گویم زباں سوزد
وگر دم درکشم ترسم که مغز استخواں سوزد -
मरा दरदेस्त अन्दर दिल अगर गोयम ज़बां सोज़द।
वगर दम दरकशम तरसम कि मग़ज़े उस्तख़्वाँ सोज़द॥
मेरे हृदय में इस प्रकार की वेदना है कि यदि कहूं तो जिह्वा जल जाती है और यदि दम को रोक लूं अर्थात चुप रहूं तो मस्तष्क की हड्डी जलने लग पड़ती हैं॥

सिमरन सुरत लगायके मुख ते कछु न बोल।
बाहर के पट दे के अन्दर के पट खोल॥ (कबीर)

لب ببندو گوش بندو چشم بند ،
گر نہ یابی سرّ حق برمن بخند -

लब बबन्दो गोश बन्दो चश्म बन्द ।
गर न याबी सिररे हक़ बर मन बख़न्द ॥

मुख, कान और नेत्रों को बन्द करलो, यदि फिर तुमको परमात्मा का रहस्य ज्ञात न हो तब मुझ पर हंसना ।

बहुगुन श्रम तैं उच्चपद, तनक दोष ते पात ।
नीठ चढ़ै गिरिपर शिला, ढारत ही ढरि जात ॥ (वृन्द)

بسا نام نیکوے پنجاہ سال ،
کہ یک نام زشتش کند پایمال - (سعدی)

बसा नाम नेकोए पंजाह साल ।
कि यक नाम ज़िशतश कुनद पायेमाल ॥ (सादी)

पचास वर्षों की बहुत सी नेकनामी को केवल एक बदनामी मलयामेट कर देती है ।

मिथ्याभाषी सांचहू, कहे न माने कोइ ।
भांड पुकारै पीरवश, मिस समझै सब कोइ ॥ (वृन्द)

یکے را کہ عادت بود راستی ،
خطائے رود در گذارند ازو -
وگر نامور شد بقول دروغ ،
وگر راست باور ندارند ازو - (سعدی)

यकेरा कि आदत बवद रास्ती ।
खताए रवद दर गुज़ारन्द अज़ो ॥
वगर नामवर शुद बक़ौले दरोग़ ।
वगर रास्त बावर नदारंद अज़ो ॥ (सादी)

जिसका स्वभाव सत्य कहने का है, वह यदि कोई भूल भी करे, तो लोग उसे क्षमा कर देते हैं। परन्तु यदि कोई मिथ्याभाषण के लिए प्रसिद्ध है, तो लोग उसकी सत्य बात पर भी विश्वास नहीं करते।

कोऊ दूर न कर सकै, विधि के उलटे अङ्क।
उदधि पिता तऊ चंद को धोय न सके कलङ्क ॥ (वृन्द)
अबस है बेनसीबों को तक़र्रुब फ़ैज़ बख़्शों का।
कि बिजली ख़ुश्क रहती है हमेशा अबरे बाराँ में ॥

(बेताब)

कबहुं प्रीति न जोरिये, जोरि तोरिये नाहिं।
ज्यों तोरे जोरे बहुरि, गांठ परति गुन मांहि ॥ (वृन्द)
न कर दुश्मनी दोस्ती की है जिससे।
यही है मुरव्वत मुहब्बत यही है ॥ (ज़हीन)

जो सख़ी हैं माले दुनियां से हैं ख़ाली उनके हाथ।
अहले दौलत जो हैं वह दस्ते करम रखते नहीं ॥

(अनीस)

کریماں را بدست اندر درم نیست ،
خداوندان نعمت را کرم نیست -   (سعدی)

करीमां रा बदस्त अन्दर दिरम नेस्त ।
खुदावन्दाने नामत रा करम नेस्त ॥   (सादी)

उदारचित्त पुरुषों के पास पैसा नहीं है और धनकुबेरों के पास उदारता नहीं है ।

जहँ तहँ पियहिं बिविध मृग नीरा ।
जनु उदार-गृह याचक भीरा ॥   (तु० दा०)

هر کجا چشمهٔ بود شیریں ،
مردم و مرغ و مور گرد آیند -   (سعدی)

हर कुजा बवद चश्मए शीरीं ।
मर्दमो मुर्गो मोर गिरदायन्द ॥   (सादी)

सादी के उपरोक्त वाक्य का अनुवाद पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी कृत निम्न लिखत है :—

विमल मधुर जलसों भरा जहां जलाशय होय ।
पशु, पक्षि अरु नारी-नर, जात तहां सब कोय ॥

जहां राम तहं काम नहिं, जहां काम नहिं राम ।
'तुलसी' कबहू होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम ।

هم خدا خواهی و هم دنیائے دوں ،
ایں خیال ست و محال ست و جنوں -

हम खुदा ख़्वाही ओ हम दुनियाए दूं ।
ईं ख़्यालस्तो मुहालस्तो जनूं ॥
बुतों से मेल खुदा पर नज़र यह खूब कही ।
शबे गुनाह व नमाज़े सहर यह खूब कही ॥ (अकबर)

अरि छोटो गनिये नहीं जातैं होय बिगार ।
तृण समूहको छिनकमें जारत ननक अंगार ॥ (वृन्द)
खाकसारी पर न कर मूज़ीकी हरगिज़ एतबार ।
जोंक मिट्टी में मिले तो भी लहू पीती रहे ॥ (ज़की)

हेत प्रेम से जो मिलै, ताको मिलिये धाय ।
अन्तर राखे जो मिलै, तासे मिले बलाय ॥ (कबीर)
यही है रस्म उल्फ़त की यही शेवा मुहब्बत का ।
जो तुमको चाहता है चाहिये तुम भी उसे चाहो ॥
(आज़ाद)

वृद्धि न ह्वै है पाप ते, वृद्धि धरम ते धार ।
सुन्यो न देख्यो सिंहका, मृग को सों परिवार ॥ (वृन्द)
जो कि ज़ालिम है वह हरगिज़ फूलता फलता नहीं ।
सब्ज़ होते देखेत खा है कभी शमशेर का ॥

"सम्मन" पर घर जाये के दुःख न कहिये रोय ।
भरम गँवाइये आपना बांटि न लै है कोय ॥

مگو اندہ خویش با دشمناں ؛
کہ لاحول گویند شادی کناں – (سعدی)

मगो अन्दहे ख़्वेश बा दुश्मनां ।
कि लाहौल गोयन्द शादी कुनां ॥ (सादी)

शत्रुओं को अपनी विपत्ति मत बतलाओ, क्योंकि वे लाहौल कहेंगे और आनन्द मनायेंगे ।

मुसीबत का हर इक से अहवाल कहना ।
मुसीबत से भी है मुसीबत ज़ियादा ॥ (हाली)

———

सब देखै पै आपनौ, दोष न देखे कोइ ।
करै उजेरो दीप पै, तरो अन्धेरो होइ ॥ (वृन्द)

نہ بیند مدعی جز خویشتن را ؛
کہ دارد پردہ پندار درپیش – (سعدی)

न बीनद मुद्दई जुज़ ख़्वेशतन रा ।
कि दारद परदा पिन्दार दर पेश ॥ (सादी)

अभिमानी अपने सिवा किसी और को नहीं देखता क्योंकि उस के सामने अहङ्कार का परदा पड़ा हुआ है अर्थात् वह अपने अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देता ।

इतनी ही दुशवार अपने ऐब की पहचान है ।
जिस क़दर करनी मलामत और को आसान है ॥ (हाली)

आप अपने ऐब से होता है कब वाक़िफ़ कोई।
जैसे बू अपने दहन की आती है कम नाक में॥

और की खोट देखती बेला।
टकटकी लोग बांध देते हैं॥
पर कसर देखते समय अपनी।
बे तरह आँख मून्द लेते हैं॥ (हरि औध)

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझ सा बुरा न होय॥ (कबीर)

گرت چشم خدا بینی ببخشد ،
نه بینی هیچکس عاجز تر از خویش- (سعدی)

गरत चश्मे ख़ुदा बीनी बबख़्शद।
न बीनी हेचकस आजिज़ तर अज़ ख़्वेश॥ (सादी)

यदि तुम को परमेश्वर की दृष्टि की सी आंखें मिल जायें, तो तुम्हें अपने से पतित कोई न दीखेगा।

औरों पै मोतरज थे अपनी जो आंख खोली।
अपने ही दिल का हम ने गंजे अयूब देखा॥(अकबर)

न थी हाल की जब हमें अपने ख़बर,
रहे देखते औरों के ऐबो हुनर।
पड़ी अपनी बुराइयों पर जो नज़र॥
तो निगाह में कोई बुरा न रहा॥ (ज़फ़र)

हम किसी को क्यों कहें मुंह से बुरा अपने "ज़फ़र"।
हम ही सब से हैं बुरे हम से बुरा कोई नहीं ॥
ऐ "ज़ौक़" किस को चश्मे हिक़ारत से देखिये।
सब हम से ज़ियादा हैं कोई हम से कम नहीं ॥

छोटे नर ते होत है, शोभायुत शिरताज।
निर्मल राखे चाँदनी, जैसे पायनदाज ॥ (वृन्द)
काम छोटों से निकलता है बड़ा।
यह सबक़ भी आंख के तिल से मिला॥ (हफ़ीज़)

धरैं न मन में शोच जे, वैर प्रबल सों ठानि।
सोवत आगि लगाय के, सदन मांझ पट तानि ॥ (वृन्द)
چه خوش گفت یک تاش با خیل تاش ؛
چو دشمن خرا شیدی ایمن مباش - (سعدی)
चे ख़ुश गुफ्त यकताश बा ख़ैलताश।
चु दुश्मन ख़राशीदी एमन मुबाश ॥ (सादी)

एक ताश ने ख़ैलताश से क्या ही ठीक कहा था कि यदि तुम ने शत्रु को हानि पहुंचाई है तो निश्चिन्त मत बैठो।

"तुलसी" पिछले पापसे हरि चरचा न सुहाय।
जैसे ज्वर के वेग से भोजन की रुचि जाय॥

تشنہ را دل نخواہد آب زلال ؛
نیم خوردہ دہان گندیدہ ۔ (سعدی)

तिश्ना रा दिल नख़्वाहद आबे ज़लाल ।
नीम ख़ुर्दा दहान गन्दीदा ॥ (सादी)

तृषातुर मनुष्य के दिल को मीठा पानी भला मालूम नहीं होता, जूठे और गन्दे मुख को ।

जिस मनुष्य के मुंह का स्वाद उसके रुग्ण होनेके कारण कडुवा हो, उसको मीठा शर्बत भी कडुवा ही लगेगा ।

(मुतनब्बी)

दुनियां कहे मैं दुरंगी, पल में पलटी जाऊं ।
सुख में जो सोये रहे, वाको दुःखी बनाऊं ॥ (तुलसी)

بہ یک ساعت بہ یک لحظ بہ یک دم ؛
دگر گوں مے شود احوال عالم ۔

बयक साइत बयक लैहज़ा बयक दम ।
दिगर गूं मेशवद अहवाले आलिम ॥

एक क्षण, एक पल, एक दम में संसार की दशा और की और हो जाती है ।

क्या एतबार दहर का इबरत की जा है यह ।
इश्रत सरा कभी कभी मातमकदा है यह ॥

फ़लक देता है, जिनको ऐश उनको ग़म भी होते हैं ।
जहां बजते हैं नक़ारे वहां मातम भी होते हैं ॥ (दाग़

दुर्वल को न सताइये जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वाँस से लोह भस्म है जाय॥ (कबीर)

بترس از آہ مظلوماں کہ ہنگام دعا کردن ؏
اجابت از در حق بہر استقبال مے آید۔

चतरस अज़ आहे मज़लूमां कि हंगामे दुआ करदन।
अजाबत अज़ दरे हक़ बहरे इस्तक़बाल मी आयद॥

ज़ईफों की तवानाई से ऐ ज़ालिम नहीं डरता।
कि खा जाता है अकसर मोरचा शमशेरे बररांको॥

ग़ाफ़िल हमारी आह से रहना न बे ख़तर।
कर ख़ौफ़ ऐसे तीर से जो बे कमाँ चले॥

बुरी करे तेई बुरो नाहिं बुरा कोई और।
बनिज करे से वानिया चोरी करे से चोर॥ (वृन्द)

عیب رنداں مکن اے زاہد پاکیزہ سرشت ؏
کہ گناہ دگرے بر تو نخواہند نوشت - (حافظ)

ऐबे रिंदाँ मकुन ऐ ज़ाहिदे पाकीज़ा सरिश्त।
कि गुनाह दिगरे बर तो नख़्वाहन्द नविश्त॥ [हा०]

ऐ पवित्र जन्म वाले ज़ाहिद तू रिंदो का ऐब मत कर,
क्योंकि दूसरे का पाप तेरे नाम न लिखा जायेगा।

ज़ाहिद! रिन्द हाले मस्त को हरगिज़ न छेड़ तू।
तुझ को पराई क्या पड़ी अपनी नवेड़ तू॥

जो करेंगे भरेंगे खुद वाइज़ ।
तुमको मेरी खता से क्या मतलब ॥ [हाली]

"कवीरा" तेरी झोंपड़ी गलकटयों के पास ।
करेंगे सोइ भरेंगे तुम क्यों भये उदास ॥

खुलि खेलो संसार में बाँधि न सक्कै कोय ।
घाट जगाती क्या करे जो सिर बोझ न होय ॥ (कबीर)

تو پاک باش برادر مدار از کس باک ،
زنند جامۂ ناپاک گازران بر سنگ – (سعدی)

तो पाक वाश बरादर मदार आज़ कस व्राक ।
ज़नन्द जामाए नापाक गाज़रान बर संग ॥ (सादी)

हे भाई । तू पवित्र रह और किसी से भय मत खा, क्योंकि धोबी मलीन वस्त्र को ही पथ्थर पर पछाड़ते हैं ।

दीप बारले आज तू दिन भर फूक फुलेल ।
काल अंधेरी रात में बैठोगे बिनु तेल ॥

ابلہے کو روز روشن شمع کافوری نہد ،
زود باشد کش بشب روغن نباشد در چراغ – (سعدی)

अबलहे को रोज़े रौशन शमा काफूरी निहद ।
ज़ूद बाशद कश बशब रौग़न न बाशद दर चिराग़ ॥
(सादी)

वह मूढ़ जो दिनके प्रकाश में कपूर का दिया जलाता है, शीघ्र ही ऐसा होगा कि रात्रो के समय उसके दिये में तेल न रहेगा ।

तुलसी जब जग में भये जग हंसा तुम रोय ।
ऐसी करनी कर चलो कि तुम हंसो जग रोय ॥

یاد داری کہ وقت زادن تو ،
همه خنداں بدند و تو گریاں -
آں چناں زی کہ وقت مردن تو ،
همه گریاں بوند و تو خنداں -

याद दारी कि वक़्ते ज़ादने तो।
हमा खंदाँ बदन्द ओ तो गिरयां॥
आंचुनाँ ज़ी कि वक़्ते मुरदने तो।
हमा गिरयाँ बवन्द ओ तो खन्दाँ॥

तू स्मरण रख कि उत्पन्न होने के समय तू रोता था और सब लोग हंसते थे। अतएव इस प्रकार जीवन व्यतीत कर कि तेरी मृत्यु के समय सब लोग रुदन करें और तू हंसे॥

जब आए थे रोते हुए आप आए थे।
अब जाएंगे औरों को रुला जाएंगे॥ (ज़ौक़)

अनघर सुघर समाज में आय बिगारै रंग।
जैसे हौज़ गुलाब को बिगरै श्वान प्रसंग॥ (वृन्द)

اگر برکۂ پر کنند از گلاب ،
سگے دروے افتد کند منجلاب - (سعدی)

अगर बिरकए पुर कुनन्द अज़ गुलाब।
सगे दर वे उफ़तद कुनद मन्जलाब॥ [सादी]

यदि एक तालाब गुलाब-जल से भर दिया जाय और एक कुत्ता उस में गिर पड़े तो वह सब ख़राब कर देगा॥

परिशिष्ट ।

श्लोक २

नहीं उससे खाली ग़रज़ कोई शै ।
वह कुछ शै नहीं पर हर इक शै में है ॥
न गौहर में है वह है न है संग में ।
वलेकिन चमकता है हर रंग में ॥
वह ज़ाहिर में हरचन्द ज़ाहिर नहीं ।
पै ज़ाहिर कोई उससे बाहर नहीं ॥ (मीर हसन)

श्लोक १०

मन्जूर है दुनिया में अगर हिम्मते आली ।
कर गरदने तसलीम को ख़म और ज़ियादा ॥
लेते हैं समर शाख़े समर वर को झुकाकर ।
झुकते हैं सख़ी वक़्ते करम और ज़ियादा ॥ (ज़ौक़)

श्लोक १५

तव इस परिपाटी को पाले पाटीर ! कौन पटु वह है ।
जो पीसे उस को भी तू तो दे पुष्टि परिमल से ॥

श्लोक १६

نخورد شیر نیم خوردۂ سگ ،
گر بسختی بمیرد اندر غار۔ (سعدی)

नख़ुरद शेर नीम ख़ुरदये सग ।
गर बसख़ती बमीरद अन्दर ग़ार ॥ (सादी

शेर भूख के मारे मांद में भले ही मर जाए, पर वह कुत्ते का जूठा नहीं खायेगा ।

पीवे नीर न सरवरो, बूंद स्वाति की आस ।
केहरि तृण नहिं चर सके, जो व्रत करे पचास ॥
जो व्रत करै पचास, विपुल गज-युत्थ विदारे ।
सत्पुरुष तजै न धीर, जीव वरु कोऊ मारे ॥
कह "गिरिधर" कविराय जोव जोधक मरि जीवे ।
चातक वरु मरि जाय, नीर सरवर नहिं पीवे ॥

श्लोक १७

जाको जस है जगत में, जगत सराहै जाहि ।
ताको जीवन सफल है, कहत अकब्बर साहि ॥

(अकबर बादशाह)

श्लोक २४

नहीं जाती असालत आदमी की सोहबते बद से ।
नहो आहिन रहे जो पास आहिन के तिला बरसों ॥

(खुरशीद)

श्लोक २५

पड़ बुरों में संगतें पाकर बुरे ।
सूझ वाला कब बुराई में फंसा ॥
देखलो काली पुतलियों में बसे ।
आंख के तिलमें न कालापन बसा ॥ (हरिऔध)

श्लोक ३१

परसुख संपति देखि सुनि, जरहिं मूढ बिन आग ।
तुलसी तिनके भाग ते, चलै भलाई भाग ॥

सुजन गुननसों खल जर्यो, पुनि पुनि बैर कराय।
पूर्ण चन्द्र गुण सों जर्यो ग्रसै राहु जिमि आय॥
(तुलसीदास)

श्लोक ३२

بداندیش را لفظ شیریں مبین
که ممکن بود زهر در انگبین - (سعدی)

बद अन्देश रा लफ़ज़ शीरीं मबीं।
कि मुमकिन बवद ज़हर दर अन्गबीं॥ (सादी)

दुर्जन के मीठे शब्दों को मत देख, क्योंकि सम्भव है, कि शहद में विष मिला हुआ हो।

श्लोक ३५

यदा विगृह्णाति हतं तदा यशः,
करोति मैत्रीमथ दूषिता गुणाः।
स्थितिं समीक्ष्योभयथा परीक्षकः,
करोत्यवज्ञोपहतं पृथग्जनम्॥ (भारवि)

कोई भी उच्च हृदय मनुष्य जब किसी नीच मनुष्य के साथ विग्रह करता है, तब विग्रह का आरम्भ होते ही उसकी सारी कीर्ति मिट्टी में मिल जाती है, और जब वह ऐसेके साथ

मित्रता करता है, तब उसके सारे गुण तत्काल ही दूषित होजाते हैं। छोटों के साथ विरोध करने से भी हानि होती है और मैत्री करने से भी। अतएव दोनों तरह अपनी ही मर्य्यादा-हानि समझ कर विचार-शील व्यक्ति नीच जनों की सदा ही उपेक्षा करते हैं। अवज्ञा-ज्ञापन-पूर्वक वे उनसे सदा ही दूर रहते हैं।

श्लोक ३७

दिल नहीं रौशन तो हैं किस काम के।
सौ शबिस्तां में अगर रौशन हैं झाड़॥
आंख अपनी ही जब तलक न खुली।
मेहर रौशन नज़र न आया साफ़॥ (हाली)

श्लोक ३८

ابر گر آب زندگی بارد ،
هرگز از شاخ بید بر نخوری - (سعدی)

अबर गर आवे ज़िन्दगी बारद।
हरगिज़ अज़ शाख़े बेद बर नख़ुरी॥ (सादी)

यद्यपि मेघ जीवन का पानी बरसावे, तो भी तुम बेत की शाखा से फल नहीं खा सकते॥

श्लोक ४१

وگر صد باب حکمت پیش نادان ،
بخوانند آیدش بازیچه درگوش - (سعدی)

वगर सद बावे हिकमत पेशे नादाँ।
बख़्वानन्द आयेदश बाज़ीचे दर गोश ॥ (सादी)

किन्तु यदि एक मूर्ख के सामने बुद्धिमानी के सौ अध्याय पढ़ जाओ, तो भी वह उस के कान में केवल हंसी मज़ाक़ की भांति होंगे।

श्लोक ४२

کسیکه لطف کند باتو خاک پایش باش ،
وگر خلاف کند دردوچشمش آگن خاک - (سعدی)

कसेकि तुत्फ़ कुनद बातो, ख़ाके पायश बाश।
वगर ख़लाफ़ कुनद दर दो, चश्मश आगन ख़ाक ॥ (सादी)

जो तुम्हारे साथ अनुग्रह करे, उसके चरणों की धूल हो जाओ। पर यदि वह तुम से वैर करे तो उस की आंखों में धूल झोंक दो।

श्लोक ४३

पर उपकृति पीकर मधुर पयसम सकल निसंक,
दंश देत अति उलट कर अहिवरसम खलवंक।

श्लोक ४४

आसमान में महल चुनावें।
अहो अनिल में चित्र बनावें॥
शीतल जल में लाय लगावें।
जो जन दुर्जन को अपनावें॥

श्लोक ४५

काटेहि पर कदली फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेस सुनु, डाँटेहि पै नव नीच ॥ (तु० द०)

श्लोक ४७

ज्ञान बढ़ै गुनवान की संगत, ध्यान बढ़ै तपसी संग कीने।
मोह बढ़ै परिवार की संगत, लोभ बढ़ै धन में चित्त दीने॥
क्रोध बढ़ै नरमूढ़ की संगत, काम बढ़ै तिय के संग कीने।
बुद्धि विवेक विचार बढ़ै, कवि "दीन" सुसज्जन संगत कीने॥

باران که درلطافت طبعش خلاف نیست ،
درباغ لاله روید و درشوره بوم خس - (سعدی)

बारां कि दर लताफ़त तबअश ख़िलाफ़ नेस्त।
दर बाग़ लाला रोयद ओ दर शोरा बूम ख़स॥ (सादी)

वर्षा के स्वभावमें कोई अन्तर नहीं है, परन्तु बाग़में लाला उगाता है और कल्लर वाली भूमि में कांटे।

श्लोक ४८

फूलों का जो सूत को हुआ कुर्ब ऐ यार।
है आज बजुरगों के गले का वह हार॥
नेकों में बैठ "मेहर" नेकों में बैठ।
आंखों पै बिठाएं ता कि तुझ को इक़रार॥

श्लोक ४९

वरू भल वास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥ (तुलसीदास)

श्लोक ५०

اگر شخصے بخرابات رود بنماز کردن ،
منسوب گردد بخمر خوردن - (سعدی)

अगर शख़्से बख़राबात रवद बनमाज़ करदन।
मन्सूब गरदद बख़मर ख़ुरदन॥ (सादी)

कोई मनुष्य शराब खाने में ख़्वाह नमाज़ पढ़ने के लिए जावे, परन्तु यही समझा जाएगा कि वह शराब पीने गया है।

It is better to hear the rebuke of the wise than for a man to hear the song of fools; (Bible.)

बुद्धिमानों की झिड़कियां सुनना अच्छा, परन्तु मूर्खों के गीत सुनना अच्छा नहीं।

श्लोक ५३

هر که بابدان نشیند نکوئی نه بیند - (سعدی)

हर कि बा बदां नशीनद निकोई न बीनद। (सादी)

जो कोई दुर्जनोंका संग करता है, उसका भला नहीं होता।

श्लोक ५६

اگر نشیند فرشتهٔ بادیو ،
وحشت آموزد و خیانت و ریو - (سعدی)

अगर नशीनद फ़रिश्तए बा देव।
वैहशत आमोज़द ओ ख़ियानत ओ रेव॥ (सादी)

यदि फ़रिश्ता राक्षसों के साथ रहे तो वह भी असभ्यता और छल कपट सीख जायेगा॥

श्लोक ५७

پسر نوح با بداں بنشست ،
خاندان نبوتش گم شد -
سگ اصحاب کهف روز چند ،
پئے نیکاں گرفت مردم شد - (سعدی)

पिसरे नूह बा बदां विनशस्त ।
ख़ानदाने नबुव्वतश गुमशुद ॥
सगे असहाफ़ कहफ़ रोज़े चन्द ।
पै नेकाँ गरिफ़्त मर्दम शुद ॥ [सादी]

हज़रत नूह का पुत्र बुरों के साथ बैठा, तो उसका पैग़म्बरी का घराना जाता रहा । गुफा वालों के कुत्ते ने कुछ दिन सत्पुरुषों का अनुकरण किया और वह आदमी हो गया ।

श्लोक ५७

He that walks mith wise man shall be wise but a companion of fools shall be destroyed.

(Bible)

बुद्धिमानों का संगी बुद्धिमान हो जायगा और मूर्खों का संगी अवश्य ही नष्ट होगा ।

श्लोक ५६

यारो ता संग कीजिये गहै हाथसों हाथ ।
दुख सुख संपति विपतिमें छिनभर तजै न साथ ॥
छिन भर तजै न साथ महत दृष्टांत बखानों ।
ज्यों अकाश संग पोल और इक सुनो बखानो ॥
कह "गिरिधर" कविराय निमक में ज्यों रस खारी ।
या प्रकार जो व्यापक तासंग लाइये यारी ॥

श्लोक ६४

ज़वाले जाहो हश्मत में बस इतनी बात अच्छी है।
कि दुनिया को बख़ूबी आदमी पहचान जाता है॥
(अकबर)

कसे कनक मुनि पारिखि पाये।
पुरुष परिखियहि समय सुभाय॥ (तुलसीदा)

श्लोक ६५

मथत मथत माखन रहे, दही मही विलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय॥
कहि "रहीम" सम्पति सगे बनत बहुत बहु रीत।
विपति कसौटी जो कसे; तेई सांचे मीत॥
ऐश के यार तो अग़यार भी बन जाते हैं।
दोस्त वह हैं जो बुरे वक्त में काम आते हैं॥ [ख़र०]

श्लोक ६६

یاران ایں زمانہ چو گل ہائے کاغذاند ،
رونق دہند رنگ دہند بو نمے دہند ۔

याराने ईं ज़माना चु गुल हाए काज़न्द।
रौनक़ दिहन्द रंग दिहन्द बू नमे दिहन्द॥

आज कल के मित्र कागज़ी फूलों के समान हैं। जो शोभा और रंग तो देते हैं, परन्तु सुगन्ध नहीं देते।

श्लोक ७३

तबीअत को जी खुश आये वही वेहतर से वेहतर है ।
जो आंखों में समा जाए वही अच्छे से अच्छा है ॥ (दरवेश)

है वही सुन्दर सराहे मन जिसे ।
हैं जगत में सब तरह की सूरतें ॥
मन अगर ले मान मन दे मान तो ।
देवता हैं मन्दिरों की मूरतें ॥ (हरिऔध)

श्लोक ८६

بسوگند گفتن که زر مغربی ست ،
چه حاجت محک خود بگوئید که چیست ـ (سعدی)

वसौगन्द गुफ़्तन कि ज़र मग़रवीस्त ।
चे हाजत महक खुद वगोयद कि चीस्त ॥ (सादी)

शपथ खाकर कहने की क्या ज़रूरत है, कि स्वर्ण पश्चिमीय अर्थात् ख़ालिस है, कसौटी स्वयं कहेगी कि कैसा है ।

श्लोक ८०

फिर पीछे पछताय सो, जो न करै मति सूध ।
वदन जीभ हिय जरत हैं, पीवत तातो दूध ॥ (वृन्द)

श्लोक ८३

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः,
प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम् ।

प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणः,
प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ॥ (भारवि)

स्पष्ट-वर्ण-रूपी आभरण धारण करने वाली, सुनने में सुख देने वाली, शत्रुओं के भी हृदय को प्रसन्न करने वाली, सुन्दर और गम्भीर पदों से परिपूर्ण वाणी की प्राप्ति संसार में अत्यन्त दुर्लभ है। जिन्होंने यथेष्ट पुण्य सम्पादन नहीं किया उन्हें ऐसी वाणी कदापि प्राप्त नहीं होती। पुण्यात्मा पुरुषों ही को ऐसी गुणवती वाणी मिलनेका सौभाग्य प्राप्त होता है।

श्लोक ८५

न हरफ़े तलख़ लब पर लाइये शीरीं ज़बाँ होकर।
सख़ुन में रंगो बू दिखलाइये गुंचा ज़बाँ होकर ॥
(तसवीर)

लाल उगल मुंह से अगर तुझमें हिम्मते मरदाना है।
आग उगलने को दहन मिसले "रफ़ल" पाया तो क्या ॥

फ़ितरतको नापसन्द है सख़ती बयानमें।
पैदा हुई न इसलिये हड्डी ज़बान में ॥ (हबीब)

बोल सकते हो अगर तो बोल लो।
तुम बड़ी प्यारी रसीली बोलियां ॥
दिल किसी का चूर करते मत रहो।
मुंह चला कर गालियों की गोलियां ॥ (हरिऔध)

श्लोक ८५

पृष्ठ ०७ में "वैताल" कवि की छप्पय के साथ।

लक्ष्मीर्वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे मित्र बान्धवाः।
जिह्वाग्रे बन्धनं प्राप्तं जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम्॥

किस लिये तब तू न सौ टुकड़े हुई।
तब विपद कैसे न री तुझ पर ढही॥
काट देने को कलेजा और का।
जीभ जब तलवार बनती तू रही॥
सब रसों में जब कि मीठा रस ऊंचा।
और तू सब दिन अधिक उसमें सनी॥
जीभ तो है चूक तेरी कम नहीं।
जो न मीठा बोल कर मीठी बनी॥ (हरिऔध)

چوں نداری کمال فضل آن بہ ،
کہ زبان در دہان نگہداری -
آدمی را زبان فضیحت کند ،
جوز بیمغز را سبکساری - (سعدی)

चूं न दारी कमाल फ़ज़ल आँ वेह।
कि ज़बाँ दर दहाँ निगहदारो॥
आदमी रा ज़बाँ फ़ज़ीहत कुनद।
जोज़ बेमग़ज़ रा सुबकसारी॥ (सादी)

यदि तुम्हारे पास प्रगाढ विद्वत्ता नहीं है, तो यही अच्छा है, कि तुम अपनी ज़बान मुंह में बन्द रक्खो। ज़बान आदमी को विपत्ति में डालती है, जैसे कि हलकापन खोखले नारियल को विपत्ति में डालता है।

श्लोक ८७

बद ज़बानी के इवज़ खंजर लगाना खूब है।
अन्दमाले ज़ख़्मे शमशेरे ज़बाँ होता नहीं॥ (हसन)

श्लोक ८८

करती हैं ऐबो हुनरको आशकारा गुफ़्तगू।
जौहरे इन्सां का है आईना गोया गुफ़्तगू॥ (ज़हीन)

श्लोक ८९

بنطق ست عقل آدمی زادہ فاش ،
چو طوطی سخن گو و نادان مباش - (سعدی)

बनुतक़स्त अक़ल आदमी ज़ादा फ़ाश।
चु तूती सखुन गो व नादां मुबाश॥ (सादी)

बात चीत करने तथा बुद्धि से मनुष्य की प्रसिद्धि है, इस लिये तुम तूती की भान्ति बात कहो और मूर्ख मत बनो।

श्लोक ९३

आ गया फ़ज़ले खुदा से फ़क्रे सबर।
अब मुसीबत की नहीं परवाह मुझे॥ [अकबर]

اے قناعت تو انگرم گردان ،

[illegible]

کنج صبر اختیار لقمان ست ،
هر کرا صبر نیست حکمت نیست۔ (سعدی)

ऐ क़नाइत त्वांगरम गरदान।
कि वरई तो हेच नामत नेस्त॥
कुंजे सबर इख़्तियार लुक़मानस्त।
हर किरा सबर नेस्त हिकमत नेस्त॥ [सादी]

हे संतोष ! तू मुझे अमीर बनादे, क्योंकि तुझसे अधिक धन कोई नहीं है। लुक़मान ने संतोष का स्थान ग्रहण किया था। जिस मनुष्य को संतोष नहीं है उसे बुद्धि नहीं है॥

श्लोक ६४

قناعت توانگر کند مرد را ،
خبر کن حریص جہاں گرد را - (سعدی)

क़नाइत त्वंगर कुनद मर्दरा।
ख़बर कुन हरीसे जहां गर्दरा॥ [सादी]

संसार में चक्र लगाने वाले लोभी को ख़बर करदो कि, संतोष मनुष्य को धनवान बना देता है॥

श्लोक ९९

नमे तुरी बहु तेज, नमे दाता धन देतो।
नमे अंब बहु फल्यो, नमे जलधर बरसंतो॥
नमे सुकविजन शुद्ध, नमे कुलवंती नारी।
नमे सिंह गय हनंत, नमे गज बेल सम्हारी॥

कुन्दन इमि कसियो नमे, वचन ब्रह्म सखा चवे।
पुनि सूका काष्ट अजान नर, भांज पड़े पर नहि नमे॥
[बीरबल (ब्रह्म)]

श्लोक १००

بللدیت باید تواضع گزیں ،
که ایں بام رانیست سلم جزیں - (سعدی)

बलंदियत वायद तवाज़ा गज़ीं।
कि ईं वाम रा नेस्त सुलमे जुज़ीं॥ [सादी]

यदि तू महानता चाहता है, तो नम्रता स्वीकार कर क्योंकि इस कोठे की सीढ़ी इसके सिवा और कोई नहीं है।

नाम यूसफ़ से हुआ याकूब का।
यूं तो हज़रत के बहुत बेटे हुए॥ [अकबर]

सैंकड़ों ही कपूत—काया से।
है भली एक सपूत की छाया॥
हो पड़ी चूर खोपड़ी ने ही।
अनगिनत बाल पाल क्या पाया॥ [हरिऔध]

श्लोक १०१

گر انصاف خواهی سگ حق شناس ،
بسیرت به از مردم ناسپاس - (سعدی)

अगर इन्साफ़ ख़्वाही सगे हक़ शनास।
वसीरत वेह अज़ मरदमे ना. सपास॥ [सादी]

यदि तू न्याय चाहता है तो कृतज्ञ कुत्ता, स्वभाव में कृतघ्न मनुष्य से अच्छा है ॥

श्लोक १०४

کل همین پنجروز و شش باشد ،

وین گلستان همیشه خوش باشد - (سعدی)

गुल हमी पंजरोज़ो शश बाशद ।

वीं गुलिस्तां हमेशा खुश बाशद ॥ (सादी)

फूल यही पांच छः दिन रहेगा और वह गुलिस्तां (पुस्तक) सदा सर सबज़ रहेगी ।

श्लोक १०५

क्या हो जिस्में आदमी को जल्द खा जाता है ग़म ।

दुश्मनी ऐसी नहीं दीमक को अरमे चोब से ॥ (रश्क)

Anxiety is the poison of life.

चिन्ता जीवन का विष है ।

श्लोक १०६

हे करतार ! हा ता सो कहूं कबहू जनि दीजिये काहु को टोटो ।
और लिखो जनि काहू के भाग्य में माल्के काजे महीपन मोटो ॥
तू हु तो जानत है अपने जिय मांगने ते कछु और न खोटो ।
जो गयो मांगन तू बलिहार तो याहीते है गयो बावन छोटो ॥

याचक नर के बदन ते, हटत तेज की जोत ।
जलद जलधि से जल गहत, श्याम वर्ण ज्यों होत ॥

श्लोक १०७

"तुलसी" कर पर कर करो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरण करो॥
घरमें भूखा पड़ रहे, दस फ़ाक़े हो जायँ।
"तुलसी" भैया वन्धुके, कबहूं न मांगन जाय॥

بدست آهک تفته کردن خمیر ،
به از دست بر سینه پیش امیر - (سعدی)

वदस्त आहक तफ़ता करदन ख़मीर।
वेह अज़ दस्त वर सीना पेशे अमीर॥ (सादी)

हाथ में गरम चूने का ख़मीर करना अर्थात हाथ को जला देना अच्छा है, परन्तु धनी पुरुष से हाथ उठा कर मांगना अच्छी नहीं॥

वाइसे ज़िल्लतो ख़्वारी है दिला दस्ते सवाल।
हाथ फैलाने से कब रहती है इज़्ज़त बाक़ी॥ (अ

जब किसी का पांव हैं हम चूमते।
हाथ बांधे सामने जब हैं खड़े॥
लाख या दो लाख या दस लाख के।
क्या रहे तब कण्ठ में कण्ठे पड़े॥ (हरिऔध)

श्लोक १०८

یوسف به مصر بادشاهی می کرد ،
می گفت گدائے بودن کنعاں خوشتر-

यूसफ़ व मिसर बादशाही मी कर्द ।
मी गुफ़त गदाए बूदन कनआँ ख़ुशतर ॥

यूसफ़ जो मिसर में बादशाही करता था वह कहता था कि कनआँ का फ़क़ीर होना इस से अच्छा है ।

श्लोक ११४

پرتو نیکاں نگیرد ہر کہ بنیا دش بدستء
تربیت نا اہل را چوں گردگاں بر گنبدست – (سعدی)

परतवे नेकाँ नगीरद हर कि बुनियादश बदस्त ।
तरबीयत नाअहल रा चूं गरदगान बर गुंबदस्त ॥ सा०

जिसकी जड़ बुराई है वह नेकी की छाया नहीं पकड़ता, बुरे को शिक्षा देना ऐसा दी है जैसा गुम्बज़ पर अख़रोट रखना अर्थात जैसे बुरे मूल वाले वृक्ष की छाया अच्छी नहीं होती, और जैसे गुम्वज़ पर अखरोट नहीं ठहरता वैसे ही बुरी प्रकृति वाले मनुष्य पर शिक्षा नहीं ठहरती ।

नहि इलाज देख्यो सुन्यो, जासों मिटत सुभाव ।
मधु पुट कोटिक देत तऊ, विष न तजत विष भाव ॥ [वृन्द]

प्याज कपूरहुके रस भीतर, बार पचासक धोई मंगाई ।
केसरके पुट दे कवि "शीतल" चन्दन वृक्षकि छांहे सुकाई ॥
मोगरेमाहिं लपेट धरी, पण ताहिकी वास कुवासहि आई ।
ऐसेहि नीचकु नीचकी संगत, कोटि उपाय कुटेव न जाई ॥

आम में आसका न कड़वापन।
है मिठाई न नीम में आती॥
छोड़ ऊंचा सका न ऊंचापन।
नीच को नीचता नहीं जाती॥ (हरिऔध)

श्लोक ११६

هیچ صیقل نکو نداند کرد ،
آهنی را که بد گهر باشد –
سگ بدریائے هفت گانه بشوی ،
چونکه ترشد پلید تر باشد –
سگ عیسیٰ گرش بمکه برند ،
چون بیائد هنوز خر باشد – (سعدی)

हेच सैक़ल निको नदानद कर्द।
आहिने रा कि बद गुहर बाशद॥
सग बदरयाए हफ़तगाना बशोई।
चूं कि तर शुद प्लीद तर बाशद॥
सगे ईसा गरश बमक्का बरंद।
चूं बियायद हिनूज़ ख़र बाशद॥ (सादी)

जिस लोहे का तत्व ही ख़राब है, उससे लोहार कोई उत्तम वस्तु नहीं बना सकता। कुत्ते को चाहे सात समुद्रों में स्नान कराओ परन्तु भीगने पर वह और भी गंदा हो

जायेगा। यदि ईसामसीह का गधा मक्के में जाये तो भी लौटने पर वह गधा ही रहेगा ॥

कमीने में कभी चूप शराफ़त आ नहीं सकती।
न शाखे तुख़म हन्ज़िलमें हो पैदा लुत्फ़ सन्दल का॥ (अ०)

श्लोक ११६

पृष्ठ १०६ में लिखे कविगंग के सवैये के साथ मिला कर पढ़ो

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक छत्रेन सूर्यातपो,
नागेन्द्रोनिशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषम्,
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्यनास्त्यौषधम् ॥
(भर्तृहरि)

जलतें अग्नि निवारिये, आतप छाता द्वार।
अंकुश तें गज वस रहै, गौ खर दण्ड प्रहार ॥
व्याधि निवारण औषधी, विष बहु मन्त्र प्रयोग।
सब की औषधि जगत महं, मूर्ख न औषधि योग ॥

श्लोक ११९

पीसते लोग हैं निबल को ही।
गो सबल बार बार खलते हैं ॥
जब गये फूल ही गये मसले।
संग को पांव कब मसलते हैं ॥

श्लोक १२२

जब दिन आवै विपति को होत न कोउ सहाय।
देखत आंखि पसार सब इष्ट बन्धु समुदाय॥
इष्ट बन्धु समुदाय यदपि सब गुन के आगर।
कियो न कछु उपकार कष्ट पायो बहु सागर॥
रहे मौनगहि इन्द्र इन्दु इन्दिरा आदि सब।
'जन सीदन' करिकोप लग्यो कुम्भज सोखन जब॥

(जनार्दन झा)

श्लोक १२७

क्या है इन रत्नों से ? नील जलद-से शरीर से भी क्या ?
सागर तेरा पानी प्यासों के भी गया नहीं मुख में॥

श्लोक १२८

दीरघ दाघ निदाघ की ज्वाल से, सूख नदी सवरी जब जायगी।
जायेगी कौन पै पान्थकी सन्तति,तापसे हाय महा अकुलायगी॥
यों मन आधि लगे जिसके तनु नित्य घटे इकरोज नसायगी।
है अतिधन्य वही पथकासर धिक जिससे निधि की जनि पायगी।

(गिरिधरशर्म्मा)

श्लोक १३४

The more we have read, the mor we have learned, the more we have medicated, the letter conditioned we are toaffirm that we know nothing. (Voltaire)

जितना अधिक हम ने पढ़ा, जितना ही अधिक हम ने

सीखा, जितना ही अधिक हमने चिन्तन किया, उतना ही हमारा यह दृढ़ निश्चय हुआ, कि हम तो कुछ भी नहीं जानते॥

जो लाख में एक पर कहीं कुछ खुला भी क़िसमत से भेद तेरा।
मिला न खोज उसका फिर किसी को हज़ार ढूंडा हज़ार देखा॥
(हाली)

यह तवले तही है जो वन्कारते हैं।
जिन्हें कुछ ख़बर है वह कहते है कव कुछ॥ (हाली)

श्लोक १३७

दूसरा कोई अधम वैसा नहीं।
पाप जिससे हैं कराती पूरियां॥
वे पतित हैं पेट पापी के लिये।
छातियों में भोंक दें जो छूरियां॥
तू न करता अगर सितम होता।
तो वड़े चैन से वसर होती॥
तो न हम वैठते पकड़ कर सर।
पेट तुझ में न जो कसर होती॥
सव वुराई वेइमानी है रवा।
भूख देती है वना वेताव जव॥
पापियों को पाप प्यारा है नहीं।
है कराता पेट पापी पाप सव॥

भरसके हो नहीं, भरे पर भी ।
कब नहीं हर तरह भरे जाते ॥
पट सके हो न पाटने पर भी ।
पेट तुमसे निपट नहीं पाते ॥ (हरिऔध)

श्लोक १४०

چو کنعان را طبیعت بے هنر بود ،
پیمبر زادگی قدرش نیفزود –
هنر بنمائی اگر داری نه گوهر ،
گل از خارست و ابراهیم از آزر – (سعدی)

चु कनान रा तबीअत बे हुनर बूद ।
प्यम्बर ज़ादगी क़दरश निअफ़ज़ूद ॥
हुनर बनमाई अगर दारी न गौहर ।
गुल अज़ ख़ारस्त ओ इब्राहीम अज़ आज़र ॥ (सादी)

कनान स्वभावतः गुण दीन था । पैगम्बर का पुत्र होने से उसकी प्रतिष्ठा कुछ भी अधिक न हुई । अपना कुल मत दिखालाओ । यदि तुम्हारे पास गुण हैं तो गुण दिखलाओ । गुलाब कांटे से पैदा होता है । हज़रत इब्राहीम आज़र के पुत्र थे ।

श्लोक १४२

जिसके पास नहीं पैसा ।

श्लोक १४६

देख कर मुंह और का जीना पड़े।
और सब हो पर कभी ऐसा न हो॥
वह बनेगा तीन कौड़ी का न क्यों।
जिस किसी के हाथ में पैसा न हो॥ (हरिऔध)

श्लोक १५५

उद्यम ते सम्पति घर आवै।
उद्यम करै सपूत कहावै॥
उद्यम करै संग सब लागै।
उद्यम ते जग में जस जागै॥
समुद उतरि उद्यम तें जैये।
उद्यम तें परमेश्वर पैये॥ (लाल)

श्लोक १७१

धन विभव की बात क्या जिन के बड़े।
रज बराबर थे समझते राज को॥
है तरस आता उन्हीं के लाडले।
हैं तरसते एक मुट्ठी नाज को॥ (हरि औध)

श्लोक २२१

विप्रगोदुःख दूर किया जिन, दैत्यम्लेच्छन को दण्ड दीना।
दीनउद्धारकरी धरणी जिन, देश सुधार को मारग लीना॥
नभ धूड़म्लेच्छ से पूर्णथा जिन, मेघघटा बन निर्मलकीना।
इनके अवतार भए सगरे जिन, भारत आरतका दुःखछीना॥

(पं० आर्य्य मुनि)

कुछ चुने हुए हिन्दी पद्य।

जल थल पृथ्वी गगन में बाहर भीतर एक।
पूरणब्रह्म कबीर है अवगत पुरुष अलेख॥
अग्नि आँच सहना सुगम सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस महा कठिन व्योहार॥
कबिरा भँवर में बैठिकै भौंचक मना न जोय।
डूबन का भय छाँडि दे करता करै सो होय॥
बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात है ताको कौन हवाल॥
गला काटि बिसमिल करैं ते काफिर बे बूझ।
औरन को काफर कहैं अपना कुफर न सूझ॥ (कबीर)

"अहमद" गति अवतार की, कहत सबै संसार।
बिछुरे मानुष फिर मिलैं, यहै जान अवतार॥

हरि से ठाकुर परिहरे और देव मन लाय।
सो नर पार न पावहीं, जन्म जन्म भरमाय॥

"तुलसी" कहत पुकारकै, सुनो सकल दै कान।
हेम दान गज दान तें, बड़ो दान सन्मान॥

किधौं सूरको सर लग्यो किधौं सूर की पीर।
किधौं सूरको पद लग्यो तन मन धुनत सरीर॥

यह दोहा सूरदास की प्रशंसा में तानसेन ने कहा था। इस पर सूरदास ने इन की प्रशंसा यों की:—

बिधना यह जिय जान के सेसहि दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलते तान सेन की तान॥

———

बुद्धि-विवेक की जोती बुझी, ममता-मद-मोह-घटा घनी घेरी।
है न सहारो अनेकन हैं ठग, पाप के पन्नग की रहै फेरी॥
त्यों अभिमान को कूप इतै, उतै कामना-रूप सिलान की ढेरी।
तू चलुमूढ़ सँभारि अरे मन, राह न जानि है, रैनि अंधेरी॥

(रूप नारायण पाण्डेय)

———

मर्द सीस पर नवै मर्द बोली पहिचानै।
मर्द खिलावै खाय मर्द चिन्ता नहिं मानै॥
मर्द देय और लेय मर्द को मर्द बचावै।
गाढ़े संकरे काम मर्द के मर्दै आवै॥
पुनि मर्द उनहि को जानिए दुखसुख साथी दर्द के।
"वैताल" कहे विक्रम सुनौ ए लच्छन हैं मर्द के॥

———

वैदिकभाव बताय दिये जिन दूर किये सब मोह मतंगा।
मेटदिये सगरे पथ नूतन दिव्यदिया जिन वैदिकरंगा॥
भारत डूबत था भवसागर पार भया जिनके सतसंगा।
सो गुरू हैं हमरे उरमें जिन मेट दिये सब मायक भंगा॥
पूरण ब्रह्म लखा जिनके बल एक अखण्ड रमाभव सारे।
रूपन रेख अलेख सदा इम भाषत है जिन को श्रुति चारे॥
ज्ञान दिनेश चढ़ा जिनसे मतमोह निशाके मिटे सब तारे।
सो गुरू है हमरे उर में जिन पाप महा निधि पार उतारे।
मोह अगाध पयो निधिमें जिन वेद जहाज़ दिया अतिभारी।
भारत दीन दुःखीजन व्याकुल जाय पड़े उस में नर नारी॥
मोह तुफान तरङ्गजिते जिन दूर किये क्षण एक मंझारी।
सो गुरू हैं हमरे उरमें जिनका यश पूर रहा दिकचारी॥
जात वहे भव सागर थे हम काढ़ लिए जिसने धर ध्याना।
अंजनज्ञान अमूल्य दिया जिससे अब देव निरञ्जन जाना॥
छूट गए जड़ देव उपासन एक महा प्रभुको प्रभु माना।
धन्य दयामय देवअमूरत है सब के घट में नहिं छाना॥

(पं० आर्य्यमुनी)

पद्धति न छोड़ेंगे प्रतापी धर्म धारियों की,
पापी वक्र-गामियों की गैल न गहेंगे हम।
सेवक बनेंगे ब्रह्मचारी, साधु, पण्डितों के,
मानी मूढ़-मण्डल के साथी न रहेंगे हम॥

पावे शुद्ध-सम्पदा तो भोगें सुख-भोग सदा,
आपदा-पड़े तो सारे संकट सहेंगे हम।
जीवन सुधारें एक तेरी भक्ति-भावना से,
दीनानाथ-शंकर-संगाती से कहेंगे हम॥

(नाथोराम शङ्कर शर्मा)

वैष्णव कहत विष्णु वसत वैकुण्ठ धाम,
शैव कहे शिवजू कैलास सुख भरे है।
कहें राधावल्लभी विहारी वृंदावनही में,
रामानंदी कहें राम अवधसें न टरे है।
एतो सब देव एक देसिक अनन्य भनै॥
हम तुम सब आप ठौरन ज्यों धरे है।
चेतन अखंड जासें कोटिन ब्रह्मांड उडै,
ऐसो परब्रह्म कहा पुरिनमें परै है॥ (अनन्य)

अंधकू बेठ दिखाइ है आरसी, बेहेरेकु बेठ के राग सुनायो।
हीरा गमार के हाथ दियो, जैसे स्वान के अंग सुगंध लगायो॥
मर्कट हाथ कपूर की बीड़ी,और गद्धे की पीठ बनात उढायो।
मूरख आगें कवित्त पढ्यो, (जैसे) भैंस के आगे मृदंग बजायो॥

(बीरबल)

गर्जसे अर्जुन क्लीव भये, अरु गर्जमें गोविंद धेन चरावे।
गर्जसे द्रोपदी दासभई, अरु गर्जसे भीम रसोई पकावे॥
गर्ज बरी त्रय लोगन में, अरु गर्ज बिना कोई आवे न जावे।
(कवि)'गंगा'कहेसुनशाहअकब्बर,गर्जसे बीबी गुलाम रिजावे॥

जंगल में जाये कहा पान फल खाये कहा,
बारकों बढ़ाय कहा अंग रहे नंगा है।
भोगकों बहाये कहा जोग को जगाये कहा,
तन को तपाये कहा वस्त्र गेरू रंगा है॥
द्वारकाकों धाये कहा छाप कों लगाये कहा,
मुंड मुंडवाये कहा छार लाये अंगा है।
"जीवा" जगमांहि ऐसे भेंष धरे होत कहा,
होत मन शुद्ध तब गेहमांहि गंगा है॥

किबलेकी ठोर बाप बादशाह शाह शाहजहान,
ताकों कैद कियो मानो मक्के आग लाई है।
बड़ो भाई दारा वाकों पकड़के कैद कियो,
म्हेरहु न आनी याको माको जायो भाई है॥
बन्धु तो मुरादवक्ष बांध चूक करिवेकों,
बीच लै कुरान खुदाहकी कसम् खाई है।

"भूषन" भनंत योंही सुनहू औरङ्गजेब,
एतेही अजाव कीय पादशाही पाई है॥
तसबी ले हाथ में सु प्रात करे बन्दगीपें,
मन में कपट सो जपे हे जाप जपके।
आगरे में आय दारा चौकमें चुनाय दीनो,
मार्यो निज तात छत्र छीन लीनो छपके।
शाहसूजे घेर लायो अधम दुहाई फेरी,
नाश कीनो कुटुम्ब तमाम चाप चपके।
"भूखन" भनंत शठ छंदी मतिमंद भयो,
सौ सौ चुहा खायके बिलाई बढ़ी तपके॥

उपरोक्त दोनों कवित्त भूषण कविने ओरङ्गज़ेव को सम्बोधन करके कहे थे।

जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू जग सुजस न लीनो।
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू पर काज न कीनो॥
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू पर पीर न जानी।
जिहि मुच्छन धरि हाथ दीन लखि दया न आनी॥
मुच्छ नहिं वे पुच्छ सम कवि "भरमि" उर आनिये।
बचन लाज नहिं दान कछु तिहि मुख मुच्छन जानिये॥

पानी बिन मोती कोई जौहरी खरीदे नाहिं,
पानी बिन सुन्दर सिरोही नहीं काम की।

पानी बिन घोड़ा की सवार नहीं चाह करे,
पानी बिन हीराहूकी कीमत न दाम की ॥
पानी बिन सुन्दर सरोवर न नीको लगे,
पानी बिन सानहू सुहात नहीं बामकी ।
एरे निरज्ञानी तू जतन करि पानी राखु,
पानी चली जैहै जिन्दगानी कौन काम की ॥

ज्ञानवान हठ करै निधन परिवार बढ़ावै ।
बंधुवा करै गुमान धनी सेवक ह्वै धावै ॥
पण्डित किरिया हीन रांड दुरबुद्धि प्रमानै ।
धनी न समझै धर्म नारि मरजाद न मानै ॥
कुलवंत पुरुष कुल विधि तजै, बन्धु न मानै बन्धु-हित ।
संन्यास धारि धन संग्रहै, ये जगमें मूरख विदित ॥
(नरहरि)

रचि बहु विधि के वाक्य पुरानन माहिं घुसाए ।
सैव साक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए ॥
जाति अनेकन करि, नीच अरु ऊँच बनायो ।
खान-पान-संबंध सबनसों बरजि छुड़ायो ॥
जन्म-पत्र बिन मिले ब्याह नहीं होन देत अब ।
बालकपन में ब्याहि प्रीति, बल नास कियो सब ॥
करि कुलीन के बहुत ब्याह, बल, बीरजु मास्यो ।

विधवा-व्याह निषेध कियो, बिभिचार प्रचारो ॥
रोकि विलायत-गमन, कूप-मंडूक बनायो ।
औरन को संसर्ग छुड़ाई प्रचार घटायो ॥
बहु देवी देवता, भूत-प्रेतादि पुजाई ।
ईश्वर सों सब विमुख किए हिन्दू घबराई ॥
(भारत-दुर्दशा-भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र)

"तजो मन, हरि-विमुखन को संग;
जाके संग कुबुधि उपजति है, परत भजन में भंग ।
कहा होत पय-पान कराए, विष नहि तजत भुजंग;
कागहि कहा कपूर चुगए, स्वान न्हवाए गंग ।
खर को कहा अरगजा-लेपन, करकट भूषन अंग;
गज को कहा न्हवाए सरिता, बहुरि धरै खहि छम ।
पाहन पतित बान नहिं वेधत, रीतो करत निषंग;
"सूरदास" खल कारी कामरी, चढ़त न दूजो रंग ॥

कैधौं मैनचेस्टर को मानि बलि दैत्यराज,
बामन स्वरूप अवतार प्रभु धारो है ।
कैधौं लंक शहर बिचारि लंका शायर को,
वायु पुत्र छोटो रूप काठ को संवारो है ।
छायो देखि हिन्द पै विदेशी वस्त्र तम तोम,
कैधौं भानु अल्प रूप आपनो निकारो है ।

"दीन" कवि कैधौं या असहयोग विष्णुजूको,
चक्र चारुगामी कैधौं चरखा हमारो है ॥

जाके सीस मोती लाल होत हैं निछावर री,
गूजरी सुगंधी जू को आँखिन को तारो है।
दास चित रञ्जन को मानो निधि अञ्जन है,
चौधरानी जू को राम भजन सो प्यारो है।
हिन्दू की है लोज शान शौकत मुहम्मदी की,
मोहन मदन पाल बाल को दुलारो है।
सुन्दर सुगुनवारो सत्यपाल दीन हितु,
नन्द को दुलारो नहीं चरखा हमारो है ॥

(ला० भगवानदीन "दीन")

थोरे घास पानी में अघानी रहै रैनि दिन,
दूध दही माखन मलाई देत खाने को।
पूतन तें खेती करवाय देत अन्न वस्त्र,
जाके हाड़चाम आंत गोवर ठिकाने को।
"दीन" कवि मेरे जान याही वात अनुमानि,
मुनिन महान धर्म मान्यो गो चराने को।
ऐसी उपकारी की कृतज्ञता बिसारि,
अब भारत निवासी मारे फिरैं दाने दाने को ॥

रावण ने कर बन्धु विरोध लखो निज सम्पति जान गंवाई।
बालि ने व्यर्थ सुकण्ठ को कष्ट दे खोई स्वजीवन राज बड़ाई॥
भूल से भी न कभी करिये निज भाइयों से इस हेतु लड़ाई।
काम हैं आते विपत्ति के काल में गाँठ का कञ्चन पीठ का भाई॥

(लोचन प्रसाद पाण्डेय)

हाथी के दाँत के खिलौना बनैं भांति भांति,
बाघन की खाल तपी शिव मन भाई है।
मृगन की खालन को ओढ़त हैं योगी यती,
छेरी की खाल थोरा पानी भरि लाई है।
साबर की खालन को बाँधत सिपाही लोग,
गैंडा की खाल राजा रायन सुहाई हैं।
कहै कवि "दयाराम" राम के भजन बिन,
मानुस की खाल कछू काम नहिं आई है॥

बड़े बिभिचारी कुलकानि तजि डारी निज,
आतम बिसारी अघ ओघ के निकेत हैं।
जटा सीस धारें मीठे वचन उचारें,
न्यारे न्यारे पंथ पारें सुभ पंथ पीठ देत हैं।
गावत कहानी पर वेद को न मानी,
ऐसे उमर बिहानी होत आये बार सेत हैं।
कलि ठकुराई में बिराग की बड़ाई करैं,
माई माईकहि के लुगाई करि लेत हैं॥

साँप सुशील, दयायुत नाहर, काक पवित्र औ साँचो जुआरो।
पावक सीतल, पाहन कोमल, रैन अमावस की उजियारो॥
कायर धीर, सती गनिका, मतवारो कहा मतवारो अनारी।
"मोतियराम" विचारि कहैं, नहिं देखी सुनी नरनाह की यारी॥

जो कुछ झूंठु मसखरी जाना, कलिजुग साई गुनवंत बखाना।
निराचार जो स्रुति-पथ-त्यागी, कलिजुग सोइ ज्ञानी, वैरागी।
जाके नख अरु जटा बिसाला, सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।
मारग सोइ, जाकहँ जोइ भावा, पंडित सोइ, जोइ गाल वजावा।
नारि-बिबस नर सकल गोसाईं, नाचहिं नट, मरकट की नाईं।
गुन-मंदिर सुन्दर पति त्यागी, भजहिं नारि पर-पुरुष अभागी।
पर-तिय-लंपट, कपट सयाने, लोभ मोह ममता-लपटाने।
नारि मुइ घर संपति नासी, मूड़ मुड़ाय भए संन्यासी।
वहु दाम सँवारहिं धाम जती; विषया हरि लीन्हि गई बिरती।
तपसी धनवंत, दरिद्र गृही; कलि-कौतुक तात न, जात कही।
धनवंत कुलन मलीन अपी; दुज-चिन्ह जनेउ उघार तपी।
कलि वारहिवार दुकाल परै; विन अन्न दुखी सब लोक मरै।
अवला कच भूषन, भूरिछुधा; धनहीन, दुखी, ममता वहुधा।
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता; मतिथोरि, कठोरि, न कोमलता।
नर पीड़ित रोग, न भोग कहीं; अभिमान, विरोध अकारनहीं।
लघु जीवन संबत पंचदसा; कलपांत न नास, गुमान असा।

(तुलसीदास)

सचिव, वैद, गुरु, तीन जो, प्रिय बोलहि भय आस।
राज, धर्म, तन, तीन कर, होइ वेग ही नास॥
स्वामी होना सहज है, दुर्लभ होना दास।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरन कपास॥
एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ यश, चातक तुलसी दास॥
तुलसी सन्त सुअंबु तरु, फूलि फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उत ते वे फल देत॥
तुलसी साथी विपत के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम भरोसो एक॥
आवत ही हर्ष नहीं, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहां न जाइये, कञ्चन बरसे मेह॥
सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलाप॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं, सन्त मिलन सम सुख कछु नाहीं।
अति संघर्षन करै जो कोई, अनल प्रगट चन्दन ते होई॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू।
आरत कहहिं विचारि न काऊ, सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीति, सहज कृपिन सन सुन्दर नीति।
ममता रत सन ज्ञान कहानी, अति लोभी सन विरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा, ऊसर बीज बये फल यथा॥

(तुलसीदास)

निसि-वासर वस्तु-विचारहि कै मुख साँचु हिए करुना-धनु है,
अघ-निग्रह, संग्रह धर्म-कथानि, परिग्रह साधुनि को गनु है।
कहि "केसव" भीतर जोग जगै अति बाहेर भोगनि सों तनु है,
मन हाथ सदा जिनके, तिनको बनुही घरु है, घरु ही बनु है।

कुबजै, कलही, काहली, कुटिल, कृतघ्न कुरूप।
सपने हू न तजै तरुनि कोढ़ी हू पति भूप॥
नारी तजै न आपनो सपने हू भरतार।
पंगु, गुङ्ग, बौरा, बधिर, अन्ध अनाथ अपार॥

(केशवदास)

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दु अपनो करै बड़ाई, गागर छुवन न देई,
वेस्या के पाँयन पर सोवै, यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर-औलिया, मुरगी-मुरगा खाई,
खाला केरी बेटी ब्याहै, घर हि में करै सगाई।
बाहर से यक मुर्दा लाए, धोय-धोय चढ़वाई,
सब सखियाँ मिलि जेंवन बैठीं, घर-भर करै बड़ाई।
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरुकन की तुरुकाई,
कहै "कबीर" सुनो भाई साधो, कौन राह ह्वै जाई।

जिस हिन्दू को है नहीं, हिन्दी का अनुराग।
निश्चय उस को जान लो, फूट गये हैं भाग॥
जिस को प्यारी है नहीं, निज भाषा निज देश।
वह सूकर सा डोलता, धरे मनुज का भेष॥

(जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी)

देखो कलिजू के राजनीति को तमासो यह,
वासो कियो आय हर एक की अकल पै।
खानदान वारे पानदान लिये दौरत हैं,
तान गान वारे बैठे जोवत महल पै॥
"ग्वाल" कवि कहे चारु चतुरन को चैन है न,
ऐस में रहत लैस क्रूर चढ़े वल पै।
मलमल धारे जे वै धूर रहे मलमल,
मलखान वारे सोवैं सेज मखमल पै॥

विद्या विन द्विज औ वगीचा बिन आमन को,
पानी विन सावन सुहावन न जानी है।
राजा बिन राजकाज राज नीति सोचे विन,
पुन्य की वसीठी कहो कैसे धौं वखानी है॥
कहैं "जयदेव" विन हित को हितू है जैसे,
साधु विन संगति कलङ्क की निशानी है।
पानी विन सर जैसे दान विन कर जैसे,
शील विन नर जैसे मोती विन पानी है॥

ऊंचो कर करे ताहि ऊचा करतार करे, ऊनो मन आनै दूनी होती हरकति है। ज्यों ज्यों धन धरै संचे त्यों त्यों विधि खरो खैंचै लाख भांति धरे कोटि भाँति सरकति है॥ दौलत दुनी में थिर काहू के न रही "क्षेम" पाछे नेकनामी वदनामी खरकति है। राजा होइ राइ होइ साह उमराइ होइ जैसी होति नेति तैसी होति वरकति है॥

कवि-गुण-गान।

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थ गौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणः॥

कालिदास की कविता में उपमा, भारवि की कविता में अर्थ गौरव और दण्डि की कविता में पद-लालित्य पाया जाता है, परन्तु माघकवि की कविता में यह तीनों गुण विद्यमान हैं।

उत्तम पद कवि गङ्ग के, उपमा को वल बीर।
केसव अर्थ-गँभीरता, सूर तीनि गुण धीर॥
सूर सूर, तुलसी ससी, उड़गन केसवदास।
अब के कवि खद्योतसम जहँ तहँ करत प्रकास॥
कविता करता तीनि हैं, तुलसी, केसव, सूर।
कविता-खेती इन लुनो, सीला बिनत मँजूर॥
तुलसी, गङ्ग, दुवौ भए सुकविन के सरदार।
इन के काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार॥
तत्व-तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।
बची खुची कबिरा कही, और कही सब झूठी॥

मतिराम, भूषन, बिहारी, नीलकण्ठ, गङ्ग, बेनी, संभु, तोष, चिन्तामनि, कालिदास की। ठाकुर, नेवाज, सेनापति, सुखदेव, देव, पजन, घनानन्दऽरु घनस्यामदास की॥ सुन्दर, मुरारि, बोधा, श्रीपति हू दयानिधि, जुगल, कविंद त्यों गोविन्द, केसौदास की। "रघुराज" और कवि गन की अनूठी उक्ति, मोहिं लगी झूठी जानि जूठी सूरदास की॥ [रघुराजसिंह]

सूर सूर, तुलसी सुधाकर, नछत्र केसौ, सेप कविराज को जुगुनू गनायकै। कोऊपरिपूरन भक्ति दिखरायो अब, काव्य-रीति, मोसन सुनहु चित्त लायकै॥ देव नभ-मण्डल समान है कवीन मध्य, जामें भानु, सितभानु, तारागन आयकै॥ उदै होत, अथवत, चारों ओर भ्रमत, पै, जाको ओर-छोर नहिं परत लखायकै॥ (मिश्र-बन्धुओं के पिता)

एक लहैं तप पुञ्जन के फल, ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाईं।
एकन को बहु सम्पति "केशव" भूषन ज्यों बलबीर बड़ाई।
एकन को जस ही सों प्रयोजन, है रसखानि रहीम को नाईं।
दास कवित्तन की चरचा, गुनवन्तन को सुखदै सब ठाईं।
(केशवदास)

India Empire or no India Empire;
We can not lose our own Shakespear, (carlyle)

भारतवर्ष का राज्य रहे चाहे चला जाये परन्तु हम अपने शेक्सपियर को नहीं खो सकते॥ (कारलाइल)

मुसल्मान मुहम्मद साहिब को सब से अन्तिम पैग़म्बर समझते हैं स्वयं मुहम्मद साहिब ने इस विषय में कहा है कि "ला नबी व अदी" मेरे उपरान्त कोई भी पैग़म्बर नहीं होगा, परन्तु इस बात के विरुद्ध एक फ़ारसी कवि ने कहा है:—

در شعر سه تن پیمبرانند - هر چند که " لا نبی بعدی" -
اوصاف و قصیده و غزل را - فردوسی و انوری و سعدی -

दर शअर से तन पयम्बरानन्द । हरचन्द के "ला नबी बअदी" ॥
अवसाफ़ो क़सोदे ओ ग़ज़लरा । फ़िरदौसी ओ अनवरी ओ सादी ॥

मुहम्मद साहिब ने यद्यपि "ला नबी बअदी" कहा है तो भी उन के पश्चात तीन पैग़म्बर और भी हुए हैं, वर्णात्मक काव्य का पैग़म्बर फ़िरदौसी, स्तुति काव्य का अनवरी और प्रणाम काव्य का सादी ॥

शुचिर्दक्षः शान्तः सुजनविनतः सूनृततरः,
कलावेदी विद्वानतिमृदुपदः काव्यचतुरः ।
रसज्ञो दैवज्ञः सरस हृदयः सत्कुलभवः,
शुभाकारश्छन्दोगुणगणविवेकी स च कविः ॥

(नारद—संगीतमकरन्द)

पवित्रता में दक्ष, शान्त स्वभाव, सत्पुरुषों के साथ नम्र रहने वाला, कलाओं के जानने वाला, विद्वान, मधुर काव्य का कर्ता, कविता करने में चतुर, रसों का ज्ञाता, भाग्य को समझने वाला, सरलहृदय, उत्तम कुल में उत्पन्न, शुभ-आकृति और छन्द-शास्त्र के गुणों का विवेकी, जिस में इतने गुण मौजूद हों वह कवि कहलाने योग्य है ।

जाके न काम, न क्रोध, बिरोध न, लोभ छुवै नहि छोभ को छाहौ ।
मोह न जाहि रहै जग बाहिर, मोल ज्वाहिर ता अति चाहौ ॥
बानी पुनीत ज्यों देव-धुनी, रस आरद सारद के गुन गाहौ ।
सील ससी सबिता छबिता, कविताहि रहै कवि ताहि सराहौ ॥

(देव—प्रेमचंद्रिका)

शुद्धि-पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	५	श्वतीभ्यः	श्वतिभ्यः
२	२	रम्रयं	रम्यं
२	१३	शंकाराचार्य	शंकराचार्य्य
५	५	पमात्मा	परमात्मा
५	६	आवश्यक्ता	आवश्यकता
५	११	पङ्गु	पङ्गुं
८	३	म्मभाप्येत	समाप्यते
१२	४	म्मिर	सर
१२	१०	वसवादी	विसंवादी
१२	१०	तुलया	तुल्यः
१३	११	चारूगंधम्	चारुगधम्
१३	१४	चोत्मानाम्	चोत्तमानाम्
१४	१	सन	सन्
१४	८	छेदेपि	छेदेऽपि
१४	८	कुठरस्य	कुठारस्य
१६	१८	नीरस्या	नीरसया
१७	१२	कृवा	कृत्वा
१७	१३	सन्ता	सन्त
१७	२०	इष्ट	मिष्ट
१९	१४	ज्योत्तिस्तां	ज्योत्स्नां
२०	१४	समन	सुमन
२२	१४	असंश्यं	असंशयं

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	१६	प्रवृत्त्यः	प्रवृत्तयः
२३	१८	सा	सो
२४	१	माहि	मोहि
२४	५	सुमहान	सुमहान्
२५	१२	कारयेत	कारयेत्
२६	४	तुरुष	पुरुष
२६	५	पिश्वास	विश्वास
२७	१२	त्रिविध	त्रिविधं
२८	१६	उपान्मुख	उपानन्मुख
२९	१०	दूराति	दूरतराति
३०	२	वाकयं	वाक्यं
३१	११	प्रज्ञा	अज्ञः
३४	१५	वातलां	वातिलां
३५	२	द्धिस्ते	द्धिसिते
३५	१२	वाश व	वाशो
३५	१३	वाश व	वाशो
३६	११	रसोद्र:	सोदर
३७	३	व्योमनि	व्योम्नि
४०	६	गुणं	गुणः
४०	७	निर्गुणां	निर्गुणं
४१	६	सूत्र	सूत्रं
४४	७	विराजतेन्	विराजते
४५	६	दुर्वृतं	दुर्वृत्त
४५	७	सीता	सीतां

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६	१	कर्तव्या	कर्तव्यः
४६	२	पिवती	पिवति
४८	१३	संसग	संसर्ग
४६	१३	दोषोषेण	दोषेण
४९	१६	भीष्मपितामा	भीष्मपितामह
५३	१६	र्दुलभाः	दुर्लभाः
५३	६	जाई के	जाई के आप
५३	२०	सर्वस्वो	सर्वस्वं
६२	७	छांडकै	छांडिकै
६२	११	का	को
६४	१	कतावे	कितावे
६४	२	दफ	दफ़तर
६४	५	ऊउर	ऊपर
६४	८	कताब	किताब
६५	२१	دیگرے	دیگر
६५	१०	काय	कार्य
६६	१	मन्वर	मिन्बर
६७	३	कामदन्या	कामःदन्यः
६७	६	सर्थात्	अर्थात
६७	६	दुःखदाय	दुःखदायक
६७	१५	समाचेरत	समाचरेत्
६७	१७	दो	को
६७	१६	بیپسند	میپسند
६८	१५	निचकर	निजकर
६८	१५	भीड़े	मीड़े

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६९	१०	भी	सी
६६	१६	ख़शबू	ख़ुशबू
७१	७	भारवो	भारवि
७२	७	ज़वानी व	ज़वानी ओ
७७	५	ज़ौंक	ज़ौक़
७७	१७	गुरूः	गुरुः
७७	१७	सुदारूणा	सुदारुणा
७७	१७	नांमिति	नामिति
७८	४	धार	छार
७८	१६	सवा	सिवा
७६	१६	ज़ंवां	ज़वां
७६	१६	खिदरमन्द	ख़िरदमन्द
७६	२०	क्लीद	कुलीदे
८०	१४	फ़गां	फ़ुगां
८२	१२	गजधना	गजधन
८३	७	क़नायत	क़नाइत
८४	६	जानता	जानना
८६	१३	वरूं	विरूं
८७	११	में	मे
९०	१६	यजज़	इजज़
९२	१०	प्रयाजन	प्रयोजन
९६	११	न न	न
९७	१	पृथवी	पृथिवी
९९	८	रीहाँ	रैहाँ
१०४	११	तरद्दद	तरद्दुद

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	३	स्तुात	स्तुति
१०७	८	अैव	ऐव
११०	३	शुचि	शुचिः
११५	३	आतश	आतिश
११७	६	रूपैया	रुपैया
१२६	२	मुसाफ़रम	मुसाफ़िरम
१२८	१७	ातष्ठात	तिष्ठति
१२८	१७	हृद्धशे	हृदयेशे
१२८	१७	र्जुन	ऽर्जुन
१२८	१८	यत्र	यंत्र
३६	११	माल	मोल
३६	१८	हस	हंस
३६	५	न क्यों	क्यों
३७	१३	टिडों	टिंडों
६	५	ता	तो
६	८	महर	मेहर
०	११	महर	मेहर
०	१८	रुचै ॥ (रहीम)	रूचै "रहीम" ॥
२	१८	रत्न	रत्नों
३	२	रहे	रहे
७	१६	वस	वस
२	६	نزد	نزد خدا
	२२	ढिंढोर	ढिंढोरा
	३	ानशा	निशां

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६३	६	मालून	मालूम
१६३	११	कावाव	कावा ओ
३६४	१४	नमहि	नामहिं
१६४	१६	पवे	पावे
१६४	२२	गुमवे	गुमावे
१७१	७	पती	पति
१७२	२	सपति	संपति
१८६	११	कस्यात्यतं	कस्यात्यन्तं
१८६	१२	परचिदृश	परिचदृशा
१८२	५	रारू	दारू
१८५	१०	वद	वद
२०४	१०	अविया	अविया
२०६	११	आन	आने
२०८	१६	रघुवंस	रघुवंश
२१४	३	गङ्गा	गङ्ग
२१८	९	सम	समय
२३७	२१	सुरनन्दी	सुरनदीं
२४८	५	के	थे
२४८	९	आ	ओ
२५४	२	जनू	जनूं
२५४	४	मुनाह व	गुनाह ओ
२५६	१६	का	को
२६७	१८	वरू	वरु
२७०	५	तुलसीदा	तुलसीदास
२८०	३	ऊच	ऊंचा

विषय सूची।

काव्य-रसास्वादन ।

सुभाषित मंजूषा इस समय आप महानुभावों के हाथ में है। यह पुस्तक कितने परिश्रम से तैयार की गई है, और इसकी चमत्कार पूर्ण उक्तियां कितनी हृदय हारिणी हैं, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। पाठक स्वयं ही अनुभव कर लेंगे। इसी प्रकार की एक दूसरी पुस्तक "काव्यरसास्वादन" शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। सुभाषित मंजूषा में जहां संस्कृत हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और अङ्गरेज़ी कवियों के नीति वाक्यों का सुललित समावेश है, वहां काव्य रसास्वादन में संस्कृत के कालीदास, भवभूति, श्रीहर्ष और भारवि आदि महान कवियों तथा उर्दू, फारसी और अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध २ कवियों की शृंगार परक समान भाव द्योतक सूक्तियों का संग्रह रहेगा। इसमें संग्रहित कविताओं में कितना लालित्य और माधुर्य होगा, यह पढ़ने ही से सम्बन्ध रखता है। अधिक न लिखकर पाठकों से केवल यही निवेदन है, कि एक वार "काव्यरसास्वादन" का आनन्द अवश्य उठावें ॥

मनुष्य को कोई काम बिना विचारे सहसा न कर डालना

जिस रात उपरोक्त श्लोकार्ध गिरवी रक्खा गया। उसी रात उसका पति भी विदेश से लौट आया। और आधी रात के समय चुपके से घर का समाचार जानने के लिये आगया। माता और पुत्र दोनों इकट्ठे सोये हुए थे। उसने समझा यह कोई पर पुरुष है। क्रोध में आकर उन्हें मारने के लिये तलवार निकाल ली। जब वार करने लगा तो श्लोकार्ध जो दीवार पर लटका हुआ था,उसकी दृष्टिमें पड़ गया। उसे पढ़कर वैश्य को विचार आगया, कि इनको जगा कर मारना चाहिये। चुनांचे उसने आवाज़ दी, उसकी स्त्री जाग पड़ी और पति को पहिचानकर अभिवादन किया और पुत्र से कहा कि तुम्हारे पिता परदेश से आगये हैं,उठकर प्रणाम करो। लड़के ने आदर पूर्वक पिता कोदण्डवत की,पत्नी से पुत्र जन्म का हाल सुनकर वैश्य को बड़ा विस्मय प्राप्त हुआ,उसने कहा, कि यदि यह श्लोकार्ध जो सामने लटका हुआ है, न होता तो मुझ से पुत्र और स्त्री के वध का अपराध हो जाता। वैश्य की स्त्री ने श्लोकार्ध को गिरवी रखने का समाचार सुना दिया। वैश्य ने भारवी कवि को बुलाया। और उससे श्लोक का शेषार्ध मांगा, भारवी ने उसे सुना दिया। वैश्य अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बहुत सा धन भारवी को प्रदान किया क्योंकि, इस श्लोक ने ही उसके पुत्र और पत्नी की जान बचाई थी।

चाहिए, क्योंकि अविवेक बड़ी भारी आपदाओं का घर है। जो लोग सोच समझकर काम करते हैं, उनके गुणों पर लुब्ध सम्पदाएं स्वयं ही उनके पास चली जाती हैं।

बिना विचारे जो करे सो पाछे पछिताय।
काम बिगारे आपनो जग में होत हंसाय॥
जग में होत हंसाय चित में चैन न पावै।
खान पान सन्मान राग रंग मनहि न भावै॥
कह 'गिरिधर' कविराय दुख कुछ टरत न टारे।
खटकत है जिय माहिं कियो जो बिना विचारे॥

چرا کارے کند عاقل کہ باز آید پشیمانی -

* चरा कारे कुनद आक़िल कि बाज़ आयद पशेमानी।
बुद्धिमान् वह कार्य्य क्यों करे, जिसके पश्चात् लज्जित होना पड़े।

बिना सोचे बिना समझे बशर जो काम करता है।
वह अपने हाथ से अपना बुरा इन्जाम करता है। (आजिज़)

---

* कहते हैं कि, औरङ्गज़ेब की पुत्री ज़ेबुलनिसा का आक़िलखां नामी सूबेदार के साथ प्रेमसम्बन्ध था। बादशाह को पता लग गया। भय के कारण आक़िलखां ने सूबेदारी त्याग दी। एक दिन आक़िलखां, ज़ेबुलनिसा के महल के नीचे से गुज़र रहा था। उस समय उसे देख कर ज़ेबुलनिसा ने यह पद कहा:—

चिन्तनीया हि विपदामादावेव प्रतिक्रिया ।
न कूपखननं युक्तं प्रदीपे वन्हिना गृहे ॥८२॥

विपत्तियों के आरम्भ में ही प्रतिक्रिया अर्थात् प्रतिकार सोचना चाहिये, जब कि घर में आग लग चुकी हो, तब कुवां खोदना वेफ़ायदा है ।

जो पहिले कीजै जतन, सो पीछे फल दाय ।
आग लगे खोदे कुवां, कैसे आग बुझाय ॥ (वृन्द)

वाणी के गुण दोष ।

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥८३॥

मीठा बोलनेसे सम्पूर्ण प्राणी प्रसन्न होते हैं, इसलिये मीठे वचन ही बोलने चाहिये । वचनोंमें दरिद्रता क्यों की जाए ।

شنیدم ترک منصب کرد عاقل خاں بنادانی –
शुनीदम तरके मनसब करद आक़िलखां बनादानी ।
मैंने सुना है कि, आक़िलखां ने नादानी से पद त्याग कर दिया है ।

इसके उत्तर में आक़िलखां ने उपरोक्त पद कहा था ।

"सम्मन" मीठी बात सों होत सबै सुख पूर ।
जेहि नहिं सीखो बोलिबो तेहि सीखो सब धूर ॥
कागा किसका धन हरे, कोयल का को देय ।
मीठे मीठे वचन से, जग अपना कर लेय ॥

به شیرین زبانی و لطف و خوشی
توانی که پیلے بموئے کشی - (سعدی)

बशीरीं ज़बानी व लुत्फ़ो ख़ुशी ।
त्वानी कि पीले बमूए कशी ॥ (सादी)

मीठी ज़बान प्रेम और ख़ुशी से तू हाथी को एक बाल से खींच सकता है ।

जहाँ राम होता है, मीठी ज़बां से ।
नहीं इसमें लगती है दौलत ज़यादा ॥ (हाली)

साम्नैव यत्रसिद्धिर्न तत्र दण्डो बुधेन विनियोज्यः पित्त यदि शर्करया शाम्यति कोऽर्थःपटोलेन ८४

(पंच तन्त्र)

जहां साम उपाय से हो कार्य्य सिद्ध होता हो। वहां दण्ड प्रयुक्त नहीं करना चाहिये, क्योंकि यदि मिश्री से ही पित्त शांत हो जाए तो पटोल देने से क्या लाभ ।

सुख दिखाय दुख दीजिये खल सों लरिये काहि ।
जो गुर दीने ही मरे क्यों विष दीजे ताहि ॥ (वृन्द)

چو کارے برآئید بلطف و خوشی ،
چہ حاجت بہ تندی و گردن کشی - (سعدی)

चु कारे वरआयद बलुत्फ़ो खुशी ।
चे हाजत वतुंदी व गरदन कशी ॥ (सादी)

जब प्रेम और प्यार से काम बन सके तो सख़्ती और दबाव की क्या ज़रूरत है ।

दुर्वाक्यं नैव यो ब्रूयादत्यर्थं कुपितोऽपिसन् ।
स महत्वंमवाप्नोति समस्ते धरणीतले ॥८५॥

(शुक्र नीति)

जो मनुष्य क्रोधित होने पर भी दुर्वचन नहीं कहता, वही पुरुष इस संसार में महानता को प्राप्त होता है ।

आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक ।
कह "कवीर" नहीं उलटिये, वहो एक की एक ॥
कहे जब एक सुन ले इन्सान दो ।
कि हक़ ने ज़वान एक दी और कान दो ॥ (ज़ौक़)
"नारायण" दुर्वचन को कौन सुने हर्षाय ।
खोटा सिक्का जाहि दो तुरत देत लौटाय ॥

دهن خویش بہ دشنام میا لا "صائب"
کیں زر نقد بہر کس کہ دہی باز دہد -

दहने ख़्वेश बदुशनाम मया ला "सायब" ।

कीं ज़र नक़द व हरकस कि दही बाज़ दहद।

ए साथव! तू अपने मुंह से दुर्वचन मत कह, क्योंकि यह धन जिस किसी को दो वही लौटा देता है।

वद न बोले ज़ेर गरदूं गर कोई मेरी सुने।
है यह गुंबद की सदा जैसी कहे वैसी सुने॥ (ज़ौक)

गाली के उत्र में भी गाली नहीं देनी चाहिये :—

साकट का मुख बिम्ब है, निकसत वचन भुवंग।
ता की औषधी मौन है, विष नहीं लागत अंग॥

दूना सुन आधा कहो, सीखो प्रकृति विवेक।
कान दिये दो ईश ने वाणी वकसी एक॥

जीभ जोग अरु भोग, जीभ सब राग बढ़ावै।
जीभ करै उद्योग, जीभ लै क़ैद करावे॥
जीभ स्वर्ग लैजाय, जीभ सब नर्क दिखावै।
जीभ मिलावै राम, जीभ सब देह धरावै॥
निजजीभ ओठ एकाग्र करि, बांट सहारे तोलिये।
"वैताल" कहे विक्रम सुनो, जीभ संभारे बोलिये॥

अहमेव गुरूः सुदारुणानामिति हलाहल! तात! मा स्मदृप्यः। ननु सन्ति भवादृशानि भूयो भुवनेऽस्मिन्नवचनानि दुर्जनानाम्॥८६॥

हे हलाहल! मत घमंड करो कि कड़वे और दुःख-

दायक पदार्थों में तुम ही श्रेष्ठ हो। क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि तुम्हारे समान इस संसार में दुष्ट पुरुषों के वचन भी हैं। जिनके सुनने से मनुष्य जीता ही मुर्दा हो जाता है।

कुटिल वचन सब से बुरा, जारि करे तन छार।
साध वचन जलरूप है, बरसै अमृत धार॥ (कबीर)

रोहति सायकैर्विद्धं छिन्नं रोहति चासिना।
वचो दुरुक्तं बीभत्सं न प्ररोहति वाक्क्षतम्॥८७

(पंच तन्त्र)

वाण से विधे हुए वृक्षादि फिर उगते हैं। तलवार से काटा हुआ भी फिर उत्पन्न होता है (अथवा इन दोनों के घाव भर जाते हैं) परन्तु वाणी के वेध अथवा घृणित वचन के ज़खम फिर नहीं भरते हैं।

छुरी का तीर का तलवार का तो घाव भरा।
लगा जो ज़खम ज़बां का हरा हमेशा रहा॥
आदमी सुन नहीं सकता किसी के ताने।
दिल में शमशेर से यह ज़खम सवा करते हैं॥ (आग़ा)

तुल्यवर्णच्छदः कृष्णः कोकिलैः सह सङ्गतः।
केन विज्ञायते काकः स्वयं यदि न भाषते॥८८॥

कोकिल की तरह कौवे का रङ्ग भी काला होता है, और कोकिल के साथ ही रहता है, परन्तु, उस समय तक

उस की पहिचान नहीं हो सकती, जब तक कि, वह स्वयं नहीं बोलता।

मानुष बैठे चुप करे, कद्र न जाने कोय।
जब ही मुख खोलै कली; प्रकट वास तब होय॥
(मलूकदास)

बोलत ही पहचानिये, साहु चोर को घाट।
अन्तर को करनी सबै, निकसे मुख की बाट॥
(कबीर)

भले बुरे सब एक से, जब लौं बोलत नाहिं।
जान परत है काक पिक, ऋतु बसंत के माहिं॥ (वृन्द)

تامرد سخن نگفته باشد ،
عیب و هنرش نهفته باشد –
زبان دردهان خرد مند چیست ،
کلید درگنج صاحب هنر –
چو دربسته باشد چه داند کسے ،
که جوهر فروش است یا پیله ور – (سعدی)

ता मर्द सुखुन नगुफ़ता बाशद।
ऐबो हुनरश निहुफ़ता बाशद॥
जंबां दर दहाने ख़िदरमन्द चीस्त।
क्लीदे दरे गंज साहिब हुनर॥
चु दर बस्ता बाशद चे दानद कसे।
कि जौहर फ़रोश अस्त या पीलावर॥ (सादी)

जब तक मनुष्य मुंह से नहीं बोलता, उसके गुण दोष छिपे रहते हैं। बुद्धिमान के मुख में जिह्वा क्या है, गुणवान के ख़ज़ाने के दरवाज़े की कुञ्जी है। जब दरवाज़ा बन्द हो, तो कोई कैसे जान सकता है, कि यह जौहरी है या बसाती।

रे रे कोकिल मा भज मौनं,
किंचिदुदञ्चय पञ्चमरागम्।
नो चेत्त्वामिह को जानीते,
काककदम्बकापिहिते चूते ॥८९॥

ऐ कोयल! तू चुप न रह, पञ्चम स्वर में आलाप कर। नहीं तो काग के समूह से भरे हुए आम के वृक्ष पर तुझे कौन जानेगा।

चमने ज़ार मुहब्बत में, ख़मोशी मौत है बुलबुल।
यहां की ज़िंदगी पाबंदिये रस्मो फ़ुग़ां तक है॥

(इक़बाल)

"आज़ाद" चुपके रहना, आठों पहर बुरा है।
फट जायेगा कलेजा कुछ बात भी किया कर॥

भद्रं भद्रं कृतं मौनं कोकिलैर्जलदागमे।
वक्तारो दर्दुरा यत्र तत्र मौनं हि शोभते॥९०॥

वर्षा ऋतु के आजाने पर कोयलें जो चुप होगईं, यह अच्छा ही किया, क्योंकि बोलने वाले जहां मेंडक हों वहां चुप रहना ही शोभा देता है।

"तुलसी" पावस के समय, धरी कोकिला मौन ।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमे पूंछिहै कौन ॥

कोलाहलैः काककुलस्य जातैः,
विराजते कोकिलकूजितं किम् ।
परस्परं सम्वदतां खलानां,
मौनं विधेयं सततं सुधीभिः ॥९१॥

हे कोयल! काक कुल का शोर मचा हुआ है। ऐसे समय में तू मीठे शब्द करने क्यों बैठी है। क्योंकि मूर्खों के परस्पर वार्तालाप करते समय बुद्धिमानों को निरन्तर मौन धारण करना ही उचित है।

न कर ऐ "तज्ञमले" खुश सखुन किसी बद ज़बां से बराबरी ।
नहीं खूब बुलबुले खुश नवा जो चमन में हमसरे ज़ाग़ हो ॥

आत्मनो मुखदोषेण बध्यन्ते शुकसारिका ।
बकास्तत्र न बध्यन्ते मौनं सर्वार्थसाधनम् ॥९२॥

अपने मुख के दोष से तोते और मैना कैद किये जाते है। बगलों को कोई पिंजरे में नहीं डालता, अतएव मौन सब कार्मों का साधन है।

ख़मोशी में मिला गौहर सदफ़ को ।
न पाया कुछ हुए जिस वक्त वा लब ॥ (वक़ार)

भली है हम नफ़सो इस चमन में ख़ामोशी ।
कि खुश नवाओं को पाबन्दे दाम करते हैं ॥

(इक़बाल)

सन्तोष ।

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥९३॥

सन्तोष रूपी अमृत से तृप्त हुए, शान्त चित्त वालों को जो सुख होता है, वह इधर उधर दौड़ने वाले धन के लोभियों को नहीं ।

गोधन, गजधन, बाजधन और रत्नधन खान ।
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान ॥ (कबीर)

सन्तोषी अपनी वृत्ति में सन्तुष्ट रहता है, किन्तु लालची यदि धनी होजाए तो भी अप्रसन्न ही रहता है ।

(अबुल-फ़तह-बुस्ती)

Poor and content, is rich and rich enough,
But riches, fineless is as poor as winter,
(Shakespear.)

निर्धन और सन्तोषी ही सच्चे धनवान हैं, धनवान तो शरद्ऋतु की तरह ग़रीब हैं। (शेक्सपियर)

سیر چشمی تنگدستاں را تونگر مے کند - (صائب)

सेर चश्मी तंगदस्ताँ रा तवंगर मेकुनद। (सायब)

सन्तोष ग़रीबों को धनवान बना देता है।

तलब अपनी न बढ़ने दो ज़रूरी रिज़क़ की हद से।
बचा लेगी क़नायत तेरी तुझ को कुफ़ की ज़द से॥
(अकबर)

सर्पा पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते,
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति।
कन्दैः फलैर्मुनिवराः क्षपयन्ति कालं,
सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥९४॥

सर्प पवन पीते हैं, परन्तु दुर्बल नहीं हैं। सूखे तृण खा कर ही वन के हाथी बली होते हैं। ऋषि, मुनि कन्दमूल तथा फल से समय को व्यतीत करते हैं। अतएव सन्तोष ही पुरुषों का परम निधान (आश्रय) है।

सब सुख है सन्तोष में, धरिये मन सन्तोष।
नेक न दुर्बल होत हैं, सर्प पवन को पोष॥ (वृन्द)
साईं इतना दे मुझे जा में कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं साधु न भूखा जाय॥ (कबीर)

स्वतन्त्रता।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयो॥

मनु० ४—१६० ॥

पराधीनता में दुःख और स्वाधीनता में सुख होता है, यह संक्षेप से सुख दुःख का लक्षण जानना चाहिये।

कर विचार देखो मन मांही।
पराधीन सपनेहु सुख नांही॥ (तुलसीदास)

पराधीनता दुख महा, सुख जग में स्वाधीन।
सुखी रमत सुक वन विषे, कनक पींजरे दीन॥ (दी० गि०)

जो प्राणी पर वश पस्रो, सो दुख सहत अपार।
यूथ विछोहो गज सहै, वंधन अंकुश मार॥ (वृन्द)

कर्म-फल।

सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता,
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथा भिमानः,
स्वकर्म सूत्र ग्रथितोहि लोकः॥९६॥

सुखदुःख का देने वाला कोई नहीं है, दूसरा देता है, ऐसा विचार करना कुबुद्धि है, "मैं करता हूं" यह वृथा अभिमान है, क्योंकि संसार अपने कर्म सूत्र में बन्धा हुआ है।

काहू न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सब भ्राता॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी।
ईश देइ फल हृदय विचारी॥
करम प्रधान विस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा॥ (तुलसीदास)

रावण रावण को हन्यो दोष राम कहं नाहिं।
निजहित अनहित देखु किन 'तुलसी' आपहि माहिं॥
को सुख को दुख देत है, देत करम झकझोर।
उरझे सुरझे आप ही, ध्वजा पवन के जोर॥ (वृन्द)

करम मिलें और फल मिलें धर धर अपना रूप।
करम फांस नहिं कट सके क्या परजा क्या भूप॥

कविवर "त्रिशूल" ने उदाहरण द्वारा इस को यों वर्णन किया है :—

मिला मिलाया उसे, मिला जब पय से पानी।
जला प्रथम जल प्रेम, अनिल में की कुर्बानी॥
तेल नीर से मिला नहीं ऊपर से ऐंठा।

रौंदा पैरों तले और ऊपर चढ़ बैठा ॥
जलने में भी दीप के हुआ उसी पर वार है।
सुफल कुफल प्रद जगत में अपना ही व्यवहार है ॥

वैरी तेरो और नहीं वैरी इक वदफैल ।
तू कुबुद्धि को छोड़ के दशो दिशा कर सैल ॥
दशो दिशा कर सैल तुझे फिर कोय न रोके ।
ऐसा को संसार माहि जो तुझको टोके ॥
कहि "गिरिधर" कविराय आप जब बने न गैरी ।
सर्व जगत हो मित्र कोऊ फिर रहै न वैरी ॥

کردن خود پیش مے آید فلک را تہمت است ،
ہرچہ اندازی میان آسیا آئید بروں - (صائب)

करदने खुद पेश मे आयद फ़लक रा तोहमत अस्त ।
हरचे अंदाज़ी मयाने आसिया आयद बरूं ॥ (सायब)

अपने किये हुए कर्म का फल भोगना पड़ता है, दैव को दोष देना व्यर्थ है। क्योंकि जो कुछ तुम चक्की में डालोगे वही बाहर आयेगा।

आप आईनए हस्ती में है तू अपना हरीफ़ ।
वर्ना यां कौन था जो तेरे मुक़ाबिल होता ॥ (ज़ौक़)

We are makers of our own fate.
हम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हैं।

यश जीवन अपयश मरण।

सजीवति यशो यस्य कीर्तियस्य स जीवति।
अयशोऽकीर्तिसंयुक्तो जीवन्नपि मृतोपमः॥

जिसका यश है, और जिसकी कीर्ति है। वह मरा हुआ भी जीवित है। परन्तु जिसका अपयश और वदनामी हो जाती है, वह जीता भी मरे के समान हैं।

वह मरता नहीं जिसकी खूबी हो वाक़ी।
वह ग़ायव नहीं जिसका हो ज़िकर हाज़िर॥
अगले लोगों ने सच कहा है:—
वद अच्छा वदनाम बुरा है। (हाली)

قارون هلاک شد که چهل خانه گنج داشت ،
نوشیرواں نمرد که نام نکو گذاشت – (سعدی)

कारूं हलाकशुद कि चिहल ख़ाना गंज दाश्त।
नौशेरवां नमुर्द कि नामे निको गुज़ाश्त॥ (सादी)

कारूं मृत्यु का ग्रास वन गया, जिसके ४० कोषागार थे। और नौशेरवां नहीं मरा, क्योंकि वह अपनी सुकीर्ति संसार में छोड़ गया है।

न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः।
विशुद्धस्य हि में मृत्यु पुत्रजन्मसमः किल॥९८

(मृच्छकटिक)

मृच्छकटिक नाटक का नायक चारुदत्त कहता है–कि मैं मृत्यु से नहीं डरता, मुझे दुःख केवल यह है कि मेरी कीर्ति कलंकित हो गई। यदि कीर्ति शुद्ध रहे और मृत्यु अभी आ जाए, तो मैं उसको पुत्र जन्म के उत्सव के समान जानूंगा।

Good name in man and in woman dear my lord.
Is the immediate jewel of their souls.
Who steals my purse, steals trash, tis something nothing.
T'was mine, it's his, and has been slave to thousands.

(Shakespear.)

पुरुष हो वा स्त्री उसकी आत्मा का सच्चा भूषण उसकी सुख्याति ही है। धन दौलत कोई चीज नहीं है। धन का पास रहना या चोरी जाना दोनों एक बराबर हैं। क्योंकि लक्ष्मी चंचल है। एक नहीं वह तो हजारों की दासी है।

(शेक्सपियर)

नम्रता ।

नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जनाः ।
शुष्क वृक्षाश्च मूर्खाश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च ११

फलदार वृक्ष झुकजाते हैं । सत्पुरुष नम्र हो जाते हैं । परन्तु मूर्ख मनुष्य और सूखे वृक्ष झुकते नहीं टूट जाते हैं । अर्थात तबाह होजाते हैं ।

गुनी रसाल रसाल से, नमै सुमन फल पाय ।
नीरस तरु से नीच नर, नवैं न कोटि उपाय ॥ दी० गि०)

हिन्दी, फ़ारसी तथा उर्दू कवियों ने नम्रता का वर्णन अपने अपने ढंग से किया है । सुनिये वह क्या कहते हैं ।

कबीर नवै सो आपको पर को नवै न कोय ।
घाल तराजू तोलिये नवै सो भारी होय ॥
कबीरा भली भई हम नीच भये,जो सबकोकरें सलाम ।
ऊंचे कुल में जनमते, तो डुब मरते अभिमान ॥
"नानक" नन्हा हो रहो, जैसी नन्ही दूब ।
बड़ी घास जल जायगी, दूब खूब की खूब ॥
बांके नर ते होत है, वन्दनीय सब लोय ।
नमत दुतीया चन्दको, पूर्ण चन्द नाकोय ॥ (वृन्द)

टेढ़ जानि बन्दइ सब काहू ।
बक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू ॥ (तु० दा०)

भली गरीबी नवनता, सकै न कोई मारि।
"सहजो" रुई कपास की, काटै ना तरवारि ॥
नर की अरु नल-नीर की, एकै गति कर जोय।
जेतो नीचो हो चले, तेतो ऊंचो होय ॥ (विहार

ख़ाक का पुतला है इन्सां, ऐ "ज़फ़र" इसके लिये।
सरकशी अच्छी नहीं है, ख़ाकसारी चाहिये ॥

حباب از سر بلندی پائمال موج مے گردد ،
غبار از خاکساری سربر اوج آسماں دارد –

हवाव अज सरवलंदी, पायेमाले मौज मी गरदद।
गुबार अज ख़ाकसारी, सिर वर औजे आस्मां दारद ॥

पानी का बुलबुला सिर उठाने से लहरों द्वारा नष्ट हो जाता है। परन्तु धूल अपनी नम्रता से आकाश पर चढ़ जाती है।

सिर उठा कर गिर पड़ा फव्वारा आख़िर सिर के बल।
झुक के चलना चाहिये, यां सिर उठाना मना है ॥

बरतरी होती है दुनिया में, मयस्सर अजज़ से।
झुक के चलने से महे नौ, माहे कामिल होगया ॥

है यह ज़बाने आब से, फव्वारे की सदा।
की जिसने सरकशी है वही सिरके बलगया ॥ (रफ़ीक़)

ख़ाकसारों को सदा फलते फूलते देखा।
दाना सरसब्ज़ हुआ ख़ाक में पिनहां होकर ॥ (हशर)

هر که خدمت کرد او مخدوم شد ،
هر که خود را دید او محروم شد –

हरकि ख़िदमत करद ओ, मख़दूम शुद।
हरकि ख़ुद रा दीद ओ महरूम शुद ॥

जो सेवा करता है वह स्वामी बन जाता है। और जो अपने आप को ही देखता रहता है, अथवा घमंडी है, वह खाली रह जाता है।

प्रतिज्ञा पालन।

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वामत्यन्त-शुद्धहृदयामनुवर्तमानाम्। तेजस्विनः सुख-मसूनपि संत्यजन्ति, सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥१००॥ (भर्तृहरि)

उत्पत्ती लज्जादि गुण, करै प्रतिज्ञा दीन।
निज जननी सों रहत पुनि, शुद्ध हृदय स्वाधीन॥
तजै न या को तेजसी, औ सतवरती लोग।
वलु सुखतें दै प्राण हू, यदि आवै संयोग॥

पुत्र प्राण ते अधिक है चारिउ युग परिमान।
सो दशरथ नृप परिहरे वचन न दीनो जान॥
वचन न दीन्हो जान वड़ेन की वृझ वड़ाई।
बात रहे सो काज और वरु सर्वस जाई॥
कहि "गिरधर" कविराय भये नृप दशरथ ऐसे।
पुत्र प्राण परिहरे वचन परिहरे न ऐसे॥
वचन तजैं नहिं सत्पुरुष तजैं प्रान वरु देस।
प्रान पुत्र दुहुं परिहस्रो वचन हेत अवधेस॥
(दीन दयाल गिरि)

कहे वचन पलटैं नहीं, जे सत पुरुष सधीर।
कहत सबै हरिचंद नृप, भस्यो नीच घर नीर॥
बड़े वचन पलटैं नहीं, कहि निरवाहैं धीर।
कियो बिभीषन लंकपति पाय विजै रघुवीर॥ (वृन्द)

सपुत्र।

एकोऽपि गुणवान्पुत्रो निर्गुणैः किं शतैरपि।
एकश्चन्द्र जगच्चक्षुर्नक्षत्रे किं प्रयोजनम्॥१०१॥

सौ निर्गुणी पुत्रों की अपेक्षा एक गुणवान पुत्र अच्छा है। चन्द्रमा अकेला ही सारे संसार को प्रकाशित कर देता है फिर तारों से क्या प्रयोजन!

कुलहि प्रकासै एक सुत, नहिं अनेक सुत निंद।
चन्द एक सब तम हरे, नहिं उड़गन के वृन्द॥
(दीनदयालगिरि)

कुपुत्र।

अजातमृतमूर्खेभ्यो मृताजातौ सुतौ वरौ।
यतस्तावल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत्॥१०२॥

जो अभी उत्पन्न नहीं हुआ, और जो उत्पन्न होकर मर गया है, तथा मूर्ख इन तीन प्रकार के पुत्रों में पहिले दो प्रकार

के पुत्र अच्छे हैं। क्योंकि इन दोनों से थोड़े दिन दुःख रहता है। परन्तु मूर्ख पुत्र सारी आयु के लिये दुःखदाई हैं।

मरै बैल गरियार मरै वह अडियल टट्टू।
मरै करकसा नार मरै वह खसम निखट्टू॥
बांमन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जु कुल में दाग लगावै॥
अरु बे न्यायी राजा मरे तबै नींद भर सोइये।
"वैताल" कहे विक्रम सुनो एते मरे न रोइये॥

دریغش مخور بر هلاک و تلف،
که پیش از پدر مرده به نا خلف - (سعدی)

दरेग़श मखुर वर हलाको तलफ़।
कि पेश अज़ पिदर मुर्दा वेह नाख़लफ़॥ (सादी)

कुपुत्र के मार डालने में संकोच मत कर, क्योंकि पिता से पहिले कुपुत्र का मर जाना ही अच्छा है॥

नाख़लफ़ तिफ़ल जो मर जाये तो अच्छा है "असीर"।
देना मां बाप को पड़ता है कफ़न छोटा सा॥

कृतघ्न।

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता लोके कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥

(व्यास)

ब्रह्महत्यारा, शराबी, चोर और व्रत को भङ्ग करने वाला—इन सब के दोष निवारण होसकते हैं, परन्तु कृतघ्न मनुष्य का दोष निवारण कदापि नहीं हो सकता।

काशी अरु मक्के जावे सन्ध्या औ निमाज़ पढ़े,
वेद हो कुरान जाप जपे आठौ याम को।
तीरथ में न्हाय के अनेक मन माला जपे,
निन्द भूख त्यागी रहे तन धन धाम को॥
"भरमि" सुकवि कहे कोटिक उपाय करे,
रानन में ध्यान धरे एक हरि नाम को।
वन फल खावे चहुं ओर आप धावे तोहु,
नाहिं भलो होत एक निमक हराम को॥

कवि-कीर्तन।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् १०४॥

ते सुकृति रससिद्ध कवि, वन्दनीय जग माहिं।
जिनके सुयस शरीर कहँ, जरा मरन भय नाहिं।

है कौन मर कर भी अमर नर बोलिए संसार में ?
है कौन सी स्थिर कीर्ति-नौका सृष्टि-पारावार में ?

नरता अमरता के सहित है प्राप्त कवि को निर्मला ।
कवि-कीर्त्ति कविता है अमिट जब तक शशी की है कला ॥

(रामचरित उपाध्याय)

रहता सख़ुन से नाम, क़यामत तलक है "ज़ौक़" ।
औलाद से तो है यही, दो पुश्त चार तक ॥
क़िस्मत में अगर औलाद नहीं, अशआर से अपना काम चले ।
दुनिया से उठें जब मेहर सिफ़त, ता अबद हमारा नाम चले ॥

(पीरोमीर)

Not marble nor gilded monuments,
Of princes shall out live this powerfull rhyme.

(Shakespear.)

राजों महाराजों की यादगार में जो पत्थर अथवा सोने के स्मारक बनाये जाते हैं, वह इतने दिनों तक जीवित नहीं रह सकते, जितने दिनों तक यह महाकाव्य जीवित रहेगा ।

(शेक्सपियर)

चिन्ता ।

चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्ता चैव गरीयसी ।
चिता दहति निर्जीवं चिन्ता देहं सजीवकम् १०५

चिता और चिन्ता इन दोनों में चिन्ता बहुत बढ़ कर है ।

चिता तो केवल मृत मनुष्यों को जलाती है, परन्तु चिन्ता जीवित प्राणियों को भी जला डालती है।

"रहिमन" कठिन चितानते चिन्ता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को चिन्ता जीव समेत॥

———

चिन्ता ज्वाल शरीरमें बिन दावा लंगि जाय।
प्रगट धुआं नहिं संचरै उर अन्तर धुंधिआय॥
उर अन्तर धुंधिआय जरै जिमि कांचकी भट्टी।
रक्त, मांस जरि जाय रहै, हड्डिन की टट्टी॥
कह "गिरिधर" कविराय सुनो हो मेरे मिन्ता।
सो नर कैसे जिये कि जिन घट व्यापै चिन्ता॥

एक फ़ारसी कवि ने पहेली द्वारा चिन्ता का जो चित्र खींचा है वह भी देख लीजिये।

یکے مرغ دیدم نہ پاو نہ پر ،
نہ از شکم مادر نہ پشت پدر –
نہ برآسمان و نہ زیر زمین ،
ہمیشہ خورد گوشت آدمی –

यके मुर्ग़ दीदम न पाओ न पर।
न अज़ शिकमे मादर न पुश्ते पिदर॥
न वर आसमानो न न ज़ेरे ज़मीं।
हमेशा खुरद गोशते आदमी॥

मैंने एक ऐसा मुर्ग़ देखा है, कि न तो मां के पेट से है न

पिता के वीर्य से, न आकाश पर है और न पृथवी पर, वह सदा मनुष्य का मांस भक्षण करता है, अर्थात् ऐसा मुर्दा चिन्ता है।

याचना।

याचना हि पुरुषस्य महत्त्वं नाशयत्यखिल-मेव तथा हि। सद्य एव भगवानपि विष्णु-र्वामनो भवति याचितुमिच्छन् ॥१०६॥

याचना पुरुष के महत्त्व को नष्ट कर देती है, याचना की इच्छा करते हुए विष्णु भगवान् भी शीघ्र ही वामन हुए, अर्थात् छोटे होकर विष्णु ने राजा बलि से याचना की।

"रहिमन" याचकता गहे, बड़े छोट है जात ॥
नारायण हू को भयो, बावन आंगुर गात ॥
सब मे लघु है मांगिवो, या में फेर न सार।
बलि पै याचित ही भये, बावन तन करतार ॥ (वृन्द)

तावद् गुणाः गुरुत्वं च यावन्नार्थयते परम्। अर्थित्वे वर्तमानस्य न गुणाः न च गौरवम् १०७

गुण और बड़ाई उसी समय तक रहते हैं, जब तक किसी से याचना न की जाए, याचना करने पर गुण और गौरव दोनों नाश होजाते है।

आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह ।
यह तीनों तब ही गये जबहि कहा कुछ देह ॥
मांगन मरन समान है, मत कोई मांगो भीख ।
मांगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥
(कबीर)

दस्ते सवाल सैंकड़ों ऐबों का ऐब है ।
जिस दस्त में यह ऐब नहीं वह दस्ते ग़ैब है ॥

जन्म-भूमि ।

किं गङ्गा किमु नर्मदा किमथवा,
कृष्णाप्रिया पावनी ।
किं देवी किमियं त्रिलोकजननी,
किं भारती किं सती ॥
सावित्री किमु पार्वती किमथवा,
श्रीदीनदुःखापहृत् ।
कारुणयामृतसिन्धुपूर्णहृदये-
यं जन्मभूमिः किमु ॥१०८॥
(गिरिधर शर्मा)

क्या यह गङ्गा है, या नर्मदा है, या पवित्र करने वाली

यमुना है, या कोई देवी है, त्रिलोकी की माता है, या सरस्वती है, या सती है, या सावित्री है, या पार्वती है, या दीनोंके दुःख दूर करने वाली लक्ष्मी है; अथवा करुणा के अमृत समुद्र से पूर्ण हृदय वाली हमारी यह जन्म-भूमि है।

حب وطن از ملک سلیمان خوشتر ،
خار وطن از سنبل و ریحان خوشتر -

* हुब्बे वतन अज़ मुल्के सुलेमान खुशतर।
ख़ारे वतन अज़ संबलो रीहाँ खुशतर॥

अपना देश सुलेमान के देश से भी अच्छा है और अपने देशका कांटा बालछड़ तथा नाज़बो से भी बेहतर है।

As a long parted mother with her child,
Plays fondly with her tears and smiles in meeting,
So weeping, smiling, greet I thee, my earth.
(Shakespear).

जिस प्रकार दिनों से बिछड़ी हुई माता जब फिर अपने बच्चे से मिलती है। तब रो रो कर और हंस हंस कर उसके साथ खेलती है। उसी तरह हे देश! मैं आंसू बहा कर और मुसकरा कर तेरा स्वागत करता हूं। (शेक्सपियर)

* जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।
जन्म देने वाली जन्म-भूमि स्वर्ग से भी बढ़ कर है।

भूखा क्या नहीं करता ।

त्यजेत्क्षुधार्ता महिला स्वपुत्रं,
खादेत्क्षुधार्ता भुजगी स्वमण्डम् ।
बुभुक्षितः किं न करोति पापं,
क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति ॥१०९॥

(हितोपदेश)

भूख से पीडित स्त्री अपने पुत्र को त्याग देती है, क्षुधा से आतुर सर्पिणी अपने अण्डों को भक्षण कर जाती है। भूखा मनुष्य क्या क्या पाप नहीं करता ? प्रायः आहार के न मिलने से क्लेशित मनुष्य दया-हीन होजाता है।

भूख में राज को तेज सब घट गयो,
भूख में सिद्ध की बुद्धि हारी ।
भूख में कामिनी काम को तज गई,
भूख में तज गयो पुरुष नारी ॥
भूख में और व्यवहार नहिं रहत है,
भूख में रहत कन्या कुमारी ।
कहत कवि "गङ्ग" नहिं भजन बन पड़त है,
चारहि वेद सें भूख न्यारी ॥

भूख नचावत रङ्कहि रावहि, भूख नचाइ जु विश्व बिगोई ।

भूख नचावत इन्द्र सुरासुर, और अनेक जहां लग जोई ॥
भूख नचावत है अध ऊर्धहि, तीनहु लोक गिनै कह कोई
सुंदर जाइ तहां दुख ही दुख, ज्ञान विना न कहुं सुख होई

(सुन्दरदास)

गर न हों दो रोटियां और इक प्याला दाल का ।
खेल फिर विगड़ा फिरे यां हाल का और क़ाल का ॥
गर न हो रोटी तो किस का पीर किसका बालका ।
वसफ़ किस मुंह से करूं मैं नान के अहवाल का ॥
दो चपाती के वर्क़ में सब वर्क़ रौशन हुए ।
इक रकाबी में हमें चौदा तबक़ रौशन हुए ॥

(नज़ीर)

शुद्ध भाव ।

मृत्तिकानां सहस्रैस्तु उदकुम्भशतैरपि ।
न शुद्धयन्ति दुरात्मानो येषां भावो न निर्मलः ॥

हज़ारों मन मिट्टी लगाने और जल के सैकड़ों घड़ों से स्नान करने पर भी दुष्टात्मा पुरुष जिनका भाव निर्मल नहीं है, शुद्ध नहीं होते हैं ।

अन्तर मैल जो तीर्थ न्हावे तिस वैकुण्ठ नहीं जाना ।
लोक पतीते कछु न होवे साहिब नहीं अजाना ॥

(कबीर)

तू ने ऐ ग़ाफ़िल अगर धोया बदन सारा तो क्या ।
धो सके गर मैल दुनिया दिल के तू अन्दर से धो ॥

(ज़फ़र)

पालन कर्ता ।

योमे गर्भ गतस्यापि वृत्तिं कल्पितवान्स्वयम् ।
शेषा वृत्ति विधाने च स किं सुप्तोऽथवा मृतः १११

जिस प्रभूने गर्भावस्था में मेरे खाने का प्रबन्ध किया, क्या शेष आयु के लिये खान पान का प्रबन्ध करने में वह सो गया है या मर गया है। अर्थात जिसने गर्भ में जीवित रखा अब भी भोजन देगा ।

दांत न थे तब दूध दियो, जब दांत दिये वो अनाज हिदेई ।
जीव बसैं जल में थल में, तिन की सुध लेई सो तेरी हुलेई ॥
जानको देत अजान को देव, जहान को देत सो ताहू कोसेई ।
क्यों अब सोच करे मन मूर्ख, सांच करे कछु आज नदेई ॥

अजगर करें न चाकरी पंछी करें न काम,
दास "मलूका" यु कहत सबके दाता राम ।

किस मुंह से खुदा वन्द तेरा शुकर अदा हो ।
जब दांत न हों बन्दो के तो दूध अता हो ॥ (मि० मे०)

मोर मेरू पर चुगै, चुगै हंसा जल सरवर ।
सिंह सकल बन चुगै, चुगै पंछी सब तरवर ॥

गज कजली वन चुगै चुगै पाताल भुजङ्गम।
मच्छ कच्छ सब चुगै चुगै घर बंधे तुरंगम॥
जीव जंत सब ही चुगे, वाकी गांठ क्या गर्थ है।
चिन्ता मत कर निश्चिंत रह पूरन हार समर्थ है॥ (गङ्ग)
राज़िक़ है रिज़क़ कीड़ेको देता है संग में।
सादिक़ उसी पै लफ़ज़ है प्रवर्दगार का॥ (वक़ार)
काम कछु आवे नहीं मोल न कोऊ ले।
बाजू टूटे बाज को साहिब चारा दे॥ (रहीम)

اگر روزی بدانش بر فزودے ،
زناداں تنگ تر روزی نبودے –
بناداں آنچناں روزی رساند ،
کہ دانا اندر آں حیراں بماند – (سعدی)

अगर रोज़ी बदानिश वर फ़ज़ूदे।
ज़नादां तङ्गतर रोज़ी नबूदे॥
बनादां आंचुनां रोज़ी रसानद।
कि दाना अन्दर आं हैरां बमानद॥ (सादी)

यदि जीविका बुद्धि से ही बढ़ती, तो निर्बुद्धि से अधिक थोड़ी रोज़ी वाला और कोई न होता। परन्तु वह (परमात्मा) निर्बुद्धि मनुष्य को ऐसे तरीक़े से रोज़ी देता है, कि बुद्धिमान उस में चकित रह जाता है।

"हाली" ने इसका समर्थन यूं किया है :—

हिलाने से रोज़ी की गर डोर हिलती।
तो रोटी निकम्मों को हरगिज न मिलती॥

वृत्यर्थं नातिचेष्टेत सा हि धात्रैव निर्मिता।
गर्भादुत्पतिते जन्तौ मातुः प्रस्रवतः स्तनौ ११२

वृत्ति अर्थात आजीवन के लिये अति चेष्टा करनी योग्य नहीं है, क्योंकि वह तो विधाता ने बनादी दी है, प्राणी के गर्भ से बाहर होते ही माता के स्तनों में दुध चूने लग पड़ता है।

प्रारब्ध पहिले बने अरु पाछे बने शरीर।
'तुलसी' यही आश्चरज है जो मन नहीं बांधे धीर॥
प्रभु को चिन्ता सभन की, आपहु करिये नाहिं।
जन्म अगाऊ भरत है, दुध मात थन माहिं॥ (वृन्द)

چراغم مے خوری از بہر روزی درجہاں ‘‘صائب’’
که پیش از طفل درپستان مادر شیر مے آید -

चरा ग़म में खुरी अज़ बहरे रोज़ी दर जहां 'सायब"
कि पेश अज़ तिफ़ल दर पिस्ताने मादर शीर मे आयद॥

ऐ "सायब" तू दुनिया में रोज़ी के लिये क्यों फ़िकर करता है। देखता नहीं कि बालक उत्पन्न होने से पहिले ही मां के स्तनों में दुध आजाता है।

مگس را بے تردد عنکبوت آرد بدام خود ،
بدطولی است درتحصیل روزی گوشه گیراں را -

मगस रा वे तरद्दुद अन्कबूत आरद बदामे खुद।
यदतौला अस्त दर तेहसीले रोज़ी गोशा गीरां रा॥-

पुरुषार्थ के बिना ही मकड़ी अपने जाले में मक्खी को ले

आती है, क्योंकि एकांत वासियों को अपना रोज़गार प्राप्त करने में कमाल हासल है।

अबस तू फ़िकरे आबो नान में यूं आवारा फिरता है।
पौहंचता ग़ैब से है रिज़क़ अरबाबे तवक्कल का ॥ (ग़ाफ़िल)
रिज़क़ का क्या ग़म कि होता है तवल्लुद बाद तिफ़ल।
पहिले भरता है खुदा पिस्ताने मादर शीर से ॥ (नासख़)
राज़िक़े मा रिज़क़ बे मिन्नत दिहद।
कोशश ऐ पाए हवस बे सूद है ॥ (तअश्शक़)
राज़िक़ ने किया तुझे पैदा जहां में बाद।
मौजूद पहिले रिज़क़ तेरा शीर से हुआ ॥ (रिंद)

जीते जागते मुर्दे।

जीवन्तोऽपि मृताः पञ्च व्यासेन परकीर्तिताः।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ११३

(पंचतंत्र)

व्यास जी ने पांच पुरुषों को जीते ही मुर्दा बतलाया है। एक दरिद्र (धनहीन) दूसरा रोगी, तीसरा मूर्ख, चौथा प्रवासी (सदा परदेशवासी) और पांचवां सदा नौकरी करने वाला।

गोस्वामी तुलसीदासी जी ने ऐसे मनुष्यों की गणना चौदह बतलाई है जो इस प्रकार है :—

कौल काम वस कृपन बिमूढ़ा ।
अति दारिद्र अजसी अति-बूढ़ा ॥
सदा रोग-बस संतत क्रोधी ।
विष्णु-विमुख स्तुति संतविरोधी ॥
तन-पोषक निन्दक अघ खानी ।
जीवत शव सम चौदह प्रानी ॥

स्वभाव नहीं बदलता ।

मधुना सिञ्चयेन्निम्बं निम्बः किं मधुरायते ।
जातिस्वभावदोषोऽयं कटुकत्वं न मुञ्चति ११४

नीम के वृक्ष का यदि शहद से भी सिंचन किया जाए तो भी वह कड़वेपन को जो कि उसका जाति स्वभाव है, नहीं त्यागता ।

जाको जैसा स्वभाव जायेगा जी से ।
नीम न मीठा होय पाये गुड़ घी से ॥

درختے که تلخش بود گوهرا ،
اگر چرب و شیرین دهی مراورا –
همان میوه تلخت آرد پدید ،
از و چرب شیرین نخواهد مزید – (ابوشکور بلخی)

दरख़्ते कि तलख़श बवद गोहरा ।
अगर चरबो शीरीं दही मर ओरा ॥
हमां मेवा तलख़त आरद पदीद ।

अज़ो चरख शीरीं नख़्वाहिद मज़ीद ॥ (अ० श० व०)

जिस वृक्ष की असल तलख़ होती है, यदि उसका मुलायम और मीठी वस्तुओं से भी सिंचन किया जाए, तो भी उस से कड़वा फल ही उत्पन्न होगा, मीठा नहीं।

तरकीबो तकल्लुफ़ लाख करो फ़ितरत नहीं छुपती ऐ।

"अकबर"

जो मिट्टी है वह मिट्टी है जो सोना है वह सोना है।

ऐब ज़ाती तरबीयत से भी न ज़ायल हो सके।
तलख़ी शक्कर में भी देवे तलख़ जो बादाम हो ॥ (ग़ाफ़िल)
जाती नहीं है सख़्त दिलों की कुरख़्तगी।
होती नहीं है नरम कभी करगदन की शाख़ ॥ (नसाख़)

काकस्य गात्रं यदि काञ्चनस्य,
माणिक्य रत्नं यदि चञ्चुदेशे।
एकैकपक्षे ग्रथितं मणीनां,
तथापि काको न तु राजहंसः ॥११५॥

कौवे के अङ्ग यदि सोने के हों, उसकी चोंच में माणिक्य और रत्न जड़े हों, और एक एक पंख मणियों से गूंथा हुआ हो, तो भी कौवा राजहंस नहीं हो सकता।

खर को तुरग न नीपजे, साजे अति से साज।
फूहड़ होय न पद्मनी, कगवा बने न बाज ॥

कगवा बने न वाज़, काच कंचन नहीं होवे।
मर्कट गल में हार, जाय जंगल में खोवे॥
कथै सुकवियां "कान" स्वभाव न पलटे नरको।
साजे अति सें साज़, तुरग नां निपजे खरको॥
दाग़ जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परबोधिये, कागा हंस न होय॥ (कबीर)

ز قسمت ازلی چہرہ سیہ بختاں ،
بشست و شوئے نگردد سفید ایں مثلست – (حافظ)

ज़ क़िसमते अज़ली चेहरा स्याह बख़तां।
बशुस्तो शोए नगरदद सफ़ेद ईं मसलस्त॥ (हाफ़िज़)

भाग्य से ही जिनका मुहं स्याह हो, वह धोने और साफ़ करने से सफ़ेद नहीं हो सकता, यह मसल है।

असफ़ल कभी न पौहंचे आला के मरतबा को।
कब शहद की हलावत पाता है गुड़ का शीरा॥ (ग़ा०)

अथवा जायमानस्य यच्छीलमनुजायते।
श्रूयते तन्महाराज नामृतस्यापसर्पति ॥११६॥

(महाभरत वनपर्व)

व्यास जी धृतराष्ट्र से कहते हैं कि हे महाराज! मनुष्यों के जन्म काल में जिसका जो स्वभाव बन जाता है, उसका वह स्वभाव मरण हुए बिना दूर नहीं होता।

خوئے بد در طبیعتے کہ بنشست ،
نہ رود جز بوقت مرگ از دست – (سعدی)

ख़ूए यद दर तबीयते कि चिनशस्त।
न रवद जुज़ बवक्त मर्ग अज़ दस्त॥ (सादी)

जिस के स्वभाव में जो बुरी खू बैठ जाती है, वह मर्ण पर्यंत नहीं छूटती।

पावककुं को जल बुंद निवारन, सूरज तापकुं छत्र कियो है।
व्याधिकुं वैद तुरंगकुं चाबक, चोपगकुं ग्रख दंड दियो है॥
हस्ति मह मदकुं किय अंकुश, भूत पिशाचकुं मंत्र कियो है।
ओखद है सबको सुखकार, स्वभाव को ओखद नाहिं कियो है॥
(गंग)

स्वार्थ

नोपकारं विना प्रीतिः कथञ्चित् कस्य चिद्भवेत्।
उपायचितदानेन यतो देवा अभीष्टदाः ॥११७॥

(पंच तंत्र)

कहीं भी किसी की प्रीति उपकार के विना नहीं होती, जैसे उपायचितदान (अर्थात् मेरा यह कार्य्य सिद्ध हो जायगा तो यह दूंगा) से देवता भी मनो कामना पूरी कर देते हैं।

सुर नर मुनि सब कर यह रीती।
स्वार्थ लागि करहिं सब प्रीति॥ (तु० दा०)
स्वार्थ के सब ही सगे, बिन स्वार्थ कोऊ नाहिं।
जैसे पक्षी सरस तरू, निरस भये उड़ जाहिं॥
अपनी अपनी गरज सब, बोलत करत निहोर।
बिन गरजे बोलै नहीं, गिरवरहू को मोर॥ (वृन्द)

बलवान महिमा ।

सर्वों बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम् ।
सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां शुचि ॥११८॥

(महाभारत)

बलवानोंके लिए सब कुछ धर्म है, सब कुछ उनका अपना है, सब कुछ उनके वास्ते पथ्य और सब कुछ शुद्ध है ।

जोरावर के होति है, सब के शिर पर राह ।
हरि रुक्मण हरि लै गयो, देखत रही सपाह ॥
यहै बात सब ही कही, राजा करे सो न्याव ।
ज्यौं चौपर के खेल में, पासों परे सो दांव ॥ (वृन्द)

अश्वं नैव गजं नैव व्याघ्रं नैव च नैव च ।
अजापुत्रं बलिं दद्याद्देवो दुर्बलघातकः ॥११९॥

घोड़े की नहीं, हाथी की नहीं, व्याघ्र की भी नहीं, परन्तु, बलि दीजाती है, बेचारे अजा पुत्र (बकरे) की, इससे सिद्ध होता है, कि दैव भी दुर्बलों (कमज़ोरों) का ही घात करने वाला है ।

हरत दैवहू निबल अरु, दुर्बल ही के प्राण ।
बाघ, सिंह को छाँडि के, देत छाग बलिदान ॥ (वृन्द)
जो है जरी यहुकमे खुदा लाज़वाल है ।
शाहबाज़ है हराम कबूतर हलाल है ॥ (जौहर)

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वन्हेः सर्वभुजो यथा ॥१२०॥

(भागवत)

सम्पत्ति शाली पुरुष धर्म का उलङ्घन करने में साहस कर लेते हैं, हो भी क्यों न तेजवालों को दोष नहीं होता, जैसे कि अग्नि प्रत्येक वस्तु को खा लेती है।

जो अहि-सेज शयन हरि करहीं ।
बुध कछु तिन कहुं दोष न धरहीं ॥
भानु कृशानु सर्व रस खाहीं ।
तिन कहं मन्द कहत कोउ नाहीं ॥
शुभ अरु अशुभ सलिल सब बहहि ।
सुरसरि कोउ न अपावन कहहीं ॥
समरथ कहं नहिं दोष गुसाईं ।
रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥ (तु० दा०)

कहते हैं हर फ़र्द इन्सां पर है फ़र्ज़ ।
मानना क़ानून का बाद अज़ खुदा ॥
पर जो सच पूछो नहीं क़ानून में ।
जान कुछ मकड़ी के जाले से सिवा ॥
उस में फंस जाते हैं जो कमज़ोर हैं ।
और हिला सकते नहीं कुछ दस्तो पा ॥
पर उसे देते हैं तोड़ इक आन में ।
जो सकत रखते हैं हाथों में ज़रा ॥

हक़ में कमज़ोरों के है क़ानून वह।
और नज़र में ज़ोरमन्दों की है—"ला" ॥

(अंगरेज़ी में क़ानून को लॉ (Law) कहते हैं, और फ़ारसी में "ला" का अर्थ 'नहीं" का है यह कवि की कविता का चमत्कार है)

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने।
विक्रमार्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥१२१॥

सिंह का वन में अभिषेक और और संस्कार कोई नहीं करता, परन्तु, वह अपने बाहु-बल के प्रताप से स्वयं ही राजा बन जाता है।

केहरि को अभिषेक कब कीन्हो विप्र समाज।
निज भुजबल के तेज से विपिन भयो मृगराज ॥

(दीनदयालगिरि)

निर्बल का कोई सहायक नहीं।

वनानि दहतो वन्हेः सखा भवति मारुतः।
स एव दीपनाशाय कृशे कस्यास्ति सौहृदम् १२२॥

वन में आग लगने पर पवन उसका सखा बन कर सहायता करता है। परन्तु वही पवन दीपक को नाश करने अथवा बुझाने का काम करता है। सच है कि, दुर्बल का कोई मित्र नहीं होता।

सबै सहायक सबल के, कोई न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाय ॥ (वृन्द)

ज्यों "रहीम" दीपक दशा, तिय राखत पट ओट ।
समय परै पर होति है, वाही पट की चोट ॥

बारिध तातहु से बिधिसे, सोम सुधा सु सहोदर दोऊ ।
रम्भा रमा तिसकी भगिनी मधुवा मधुसूदन के बहनोऊ ॥
तुच्छ तुषार इतौ परिवार भयो सरमध्य सहाय न कोऊ ।
सूख सरोज रह्यो जल हीन नहीं दुख में कहिको कोउ होऊ ॥

आपत्ति में अपने भी पराए होजाते हैं ।

आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम् ।
मातृजंघा हि वत्सस्य स्तम्भो भवति बन्धने १२३॥

(हितोपदेश)

विपद्काल आने पर हितु भी अहितु हो जाते हैं, जैसे दूध दुहने के समय बछड़े का बांधने में माता का जंघा ही खूटा हो जाती है ।

आवत समय विपत्ति के शत्रु मित्र ह्वै जाय ।
दुहत होत बच्छ बंध को थंभ मात के पाय ॥ (वृन्द)

دوست دشمن مے شود "صائب" بوقت بیکسی ،
خون زخم آهوان رهبر شود صیاد را ـ

दोस्त दुश्मन मे शवद "सायव" वक्ते वेकसी।
खून ज़खमे आहुआं रहबर शवद सय्याद रा॥

मुसीबत के समय मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। जैसे कि हिरणों का खून शिकारी को रास्ता दिखलाने वाला बन जाता है।

इक दिन ऐसा होयगा, कोऊ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहे, तन की नारी जाहिं॥
(कबीर)

निकट न लागत मीत हितु, विपत काल के माहिं।
होत अन्धेरो तजत है संगति अपनी छांहिं॥

स्याह बख़ती में कब कोई किसी का साथ देता है।
कि तारीकी में साया भी जुदा रहता है इन्सां से॥
(ज़ौक़)

कौन होता है बुरे वक्त की हालत का शरीक।
मरते दम आंख को देखा है कि फिर जाती है॥

वक्ते बद क्या किसी से हो रफ़ाक़त की उमीद।
भागता है जब ज़वाल आता है साया सा रफ़ीक़॥ (ईमा)

तीरा बख़्ती देखना साया परे को हट गया।
धूप में ली आड़ हमने जब किसी दीवार की॥ (अरशद)

होता नहीं है कोई बुरे वक्त में शरीक।
पत्ते भी भागते हैं खिज़ां में शजर से दूर॥ (मेहर)

रफ़ीक़ हाल बुरे वक्त में नहीं कोई।
शरीक जंग में शमशेर का न्याम नहीं॥

हालते बद में नहीं कोई किसी का आशना।
कूच कर जाता है पेश अज़ मुर्दने बीमार ख़्वाब॥
(आतश)

भाग्य-हीन।

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके,
वाञ्छन्देशमना तपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः,
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यांत्यापदः
(भर्तृहरि)

चन्दुला मस्तक भया, विकल किरण रवि मांह।
गया दैव संयोग से, ताल वृक्ष के छाँह॥
तहाँ जात ही सीस पै, गिरा ताल फल आय।
दुखिया ताके चोट ते, बोला उठ कर हाय॥
जहां अभागा जायगा, वहां विपति है संग।
करम रेख ते रहत है, नर की बुद्धि दंग॥

गंजा नर शिर भानु तापतें दग्धन लाग्यो।
विधि वश छाया हेत, ताड़ तरवर तर भाग्यो॥
ताहि जात तिहि ठौर, वृक्ष तें फल इक टूट्यो।
भयो भयानक शब्द, गिरत गञ्जा शिर फूट्यो॥

"श्री शिव सम्पति" कवि भनै, सुनो मुख्य यह बात है
विपति संग लगि जात तहँ, भाग्य हीन जहँ जात है।

आए थे तेरे कूचे में बचने को मर्ग से।
यां आके जो देखा तो अजल ढूंढ रही है॥

تہدستان قسمت راچہ سود از رہبر کامل؛
کہ خضر از آب حیواں تشنہ مے آرد سکندر را –

तही दस्ताने क़िसमत रा चे सूद अज़ रहवरे कामिल।
कि ख़िज़र अज़ आवे हैवाँ तिश्ना मे आरद सिकन्दर रा॥

हत भाग्य मनुष्य को योग्य पथप्रदर्शक से क्या लाभ है, क्योंकि ख़िज़िर आवे हैवां (अमृत जल) से सिकन्दर को प्यासा लाया था।

भाग हीन को ना मिले भली वस्तु को भाग।
दाख पके मुख पाक को होत काग को रोग॥ (वृन्द)

कृपण निन्दा।

कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति।
अस्पृशन्नेव वित्तानि यःपरेभ्यः प्रयच्छति।१२५

कृपण मनुष्य के समान दानी न तो भूतकाल में कोई हुआ और न भविष्य में कोई होगा। क्योंकि और लोग तो अपने धन का अधिकांश भोग करने के पश्चात कुछ थोड़ा सा

दान करते हैं । परन्तु कृपण मनुष्य भोग तो दूर रहा उसे छूता तक नहीं । सब का सब ज्यों का त्यों दूसरों को दे डालता है अर्थात् छोड़ मरता है ।

त्यागी कहिये कृपण को गहत न कौड़ी साथ ।
लेत न कछु परलोक हित, रमता रीते हाथ ॥
कृपण धनी को जगत में दंड दियो है राम ।
भोजन आगे धर मनो मुख में दई लगाम ॥
सूम ने रूपैयो लीनो कर में पसीनो देख,
"ज्येष्ठ" कवि दीन्हो उपदेश यों रूपैया तें ।
काहे अकुलात आंसुपात कर जारे गात,
हैं तो प्रिय मोकों मात तात ब्हैन भैया तें ॥
दाता घर जातो तो कटातो न बिराम पातो,
आतो परो मेरे हाथ हार मत हैया तें ।
जीत रहों जोलों तोलों दाटों न वटाऊं तोय,
मैं जो मरि जैहों तो तो सिखाय जैहों छैया तें ॥
(ज्येष्ठलाल)

चरं विभवहीनेन प्राणैः संतर्पितोऽनलः ।
नोपचारपरिभ्रष्टः कृपणः प्रार्थितो जनः ॥ १२६

निर्धन हो कर प्राणों की आहुती से उदर-ज्वाला को बुझाना अच्छा, परन्तु उपचार हीन कृपण से प्रार्थना करना अच्छा नहीं ।